आपने अपनी सन्तानों को उच्च शिक्षा दिलाने में कसर नहीं रक्खी। आपके दो पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ ग्रेजुयेट हैं, और सबसे छोटा पुत्र भी बीएस. सी. में पढ़ रहा है। आपकी धर्मपत्नी का निधन गत सन् ५० में हुआ। वह प्रयाग स्त्री-समाज की प्रधाना थीं तथा अपने पति के समान ही दृढ़ता के साथ आर्यसमाज का कार्य अपने जीवन में करती रहीं।

श्री गजाधरप्रसाद की स्वर्गीय श्री नारायणस्वामी से बहुत घनिष्ठता थी और श्री मथुराप्रसादजी मैनेजिंग डाइरेक्टर, आर्य साहित्य मण्डल, लिमिटेड से भी बड़ी मित्रता है। यों तो आप जिससे भी मिलते हैं, उससे घनिष्ठता हो ही जाती है, परन्तु श्री मदनमोहन सेठ, प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त तथा अवकाश प्राप्त डिस्ट्रिक जज्ज से भी बड़ी घनिष्ठता है।

आपकी आयु इस समय लगभग ७४ वर्ष की है, फिर भी आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और आपका एक भी दांत नहीं गिरा है। इसका कारण यही है कि आपकी दिनचर्या बहुत ही संयम सहित और अनुकरणीय है।

श्री गजाधरप्रसादजी

का

संक्षिप्त परिचय

श्री गजाधरप्रसादजी, जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई [illegible] समर्पित की जा रही है, का जन्म सन् १८७४ ई० [illegible] था और

२५ वर्ष से अधिक आप आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से नायक जाति के सुधार का कार्य पहाड़ों में करते रहे तथा नायक गर्ल्सप्रोटक्शन एक्ट को यू० पी० कौंसिल में स्वीकार कराने में भी आपने अधिक भाग लिया।

सौभाग्यवश आपकी धर्मपत्नी भी शिक्षिता और आर्य देवी थीं। जिन्होंने परिवार का सारा बोझ सम्हाल कर श्री गजाधरप्रसाद को घर के कामों से मुक्त कर दिया था। चीफ़ आडीटर होने के कारण आपको संयुक्त-प्रान्त के अधिकांश ज़िलों में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा, इससे सभा का कार्य भी आप बड़े उत्साह से करते रहे।

आपने अपनी सन्तानों को उच्च शिक्षा दिलाने में कसर नहीं रक्खी। आपके दो पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ ग्रेजुयेट हैं, और सबसे छोटा पुत्र भी बीएस. सी. में पढ़ रहा है। आपकी धर्मपत्नी का निधन गत सन् ५० में हुआ। वह प्रयाग स्त्री-समाज की प्रधाना थीं तथा अपने पति के समान ही दृढ़ता के साथ आर्यसमाज का कार्य अपने जीवन में करती रहीं।

श्री गजाधरप्रसाद की स्वर्गीय श्री नारायणस्वामी से बहुत घनिष्ठता थी और श्री मथुराप्रसादजी मैनेजिंग डाइरेक्टर, आर्य साहित्य मण्डल, लिमिटेड से भी बड़ी मित्रता है। यों तो आप जिससे भी मिलते हैं, उससे घनिष्ठता हो ही जाती है, परन्तु श्री मदनमोहन सेठ, प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त तथा अवकाश प्राप्त डिस्ट्रिक जज्ज से भी बड़ी घनिष्ठता है।

आपकी आयु इस समय लगभग ७४ वर्ष की है, फिर भी आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और आपका एक भी दांत नहीं गिरा है। इसका कारण यही है कि आपकी दिनचर्या बहुत ही संयम सहित और अनुकरणीय है।

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

ब्रह्मचर्य

मानव जीवन के लिये वैदिक धर्म में चार आश्रमों का विधान है, उनमें ब्रह्मचर्य आश्रम सबसें प्रथम और सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। मनुष्य-जीवन रूपी भवन की नींव का पत्थर ब्रह्मचर्य ही है। यदि किसी मकान की नींव कमज़ोर हो तो मकान चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकता, वह जरा से झटके में ही गिर जायगा। इसी प्रकार जिसने ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन ठीक ढंग से नहीं किया, उसका जीवन तनिक से रोग के धक्के से ही समाप्त हो जाता है, ब्रह्मचारी न रहने वाले का जीवन कभी स्थिर, सबल, स्थायी और सफल नहीं हो सकता। ब्रह्मचारी कहते किसे हैं? "ब्रह्म" और "चारी" इन दो पदों से यह शब्द बना है, ब्रह्म शब्द का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान, अन्न, पवित्रता, शक्ति, महत्त्व इत्यादि। ब्रह्म शब्द बृह् धातु से बना है, जिसका अर्थ है बढ़ना, वृद्धि करना, उन्नति करना, विकास को प्राप्त होना इत्यादि। चारी शब्द का अर्थ है, चलने वाला, यत्न करने वाला, प्रयत्नशील इत्यादि। इस प्रकार "ब्रह्मचारी" शब्द के अर्थ निम्न प्रकार होते हैं (१) ईश्वर में विचरने वाला अर्थात् ईश्वर की भक्ति करने वाला, (२) वेद में विचरने वाला, (३) ज्ञानप्राप्ति के लिये यत्न करने वाला, (४) पवित्रता के लिये उद्योगशील, (५) बुद्धि का विकास करने वाला, (६) अन्न आदि पदार्थों का तत्त्व जो वीर्य है, उसको बढ़ाने वाला, (७) तपस्वी जीवन बिताने वाला, (८) पुरुषार्थ करने वाला।

इतने गम्भीर अर्थों वाला ब्रह्मचारी शब्द का महत्त्व वेद में और भी अधिक बतलाया गया है। अथर्ववेद का ब्रह्मचर्य सूक्त ब्रह्मचर्य की महिमा से परिपूर्ण है। उसके प्रथम मन्त्र में ही कहा गया है कि ब्रह्मचारी पृथ्वी से लेकर आकाश तक के सब पदार्थों को अपने अनुकूल बना लेता है और अपने तप से अपने आचार्य को परिपूर्ण बनाता है "स आचार्यं तपसा पिपर्ति"। इसी प्रकार आगे कहा है:—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ॥
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य रूप तप के साधन से राजा राष्ट्र का विशेष संरक्षण करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के साथ रहने वाले ब्रह्मचारी की ही इच्छा करता है।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम् ॥
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥

अर्थ—कन्या ब्रह्मचर्य पालन करने के पश्चात् तरुण पति को (विंदते) प्राप्त करती है। (अनड्वान्) बैल और (अश्वः) घोड़ा भी ब्रह्मचर्य पालन करने से ही घास खाता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य रूप तप से सब देवों ने मृत्यु को (अप अघ्नत्) दूर किया। इंद्र ब्रह्मचर्य से ही देवों को (स्वः) तेज (आभरत्) देता है।

अपमृत्यु दूर करने का उपाय ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य आयुष्य वृद्धि करने वाला और रोग दूर करने वाला है। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह मृत्यु को दूर कर सकता है। इसी रीति से देव अमर

बने हैं। जो देवों को साध्य हुआ वह तपस्या से मनुष्य भी साध्य कर सकते हैं। देवों का राजाधिराज इंद्र भी सबसे अधिक तेजस्वी है, क्योंकि उसने सबसे अधिक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जो इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करेगा वह सबसे अधिक तेजस्वी हो सकता है। ब्रह्मचर्य का तेज उसके मुख पर ही दिखाई देता है॥ ब्रह्मचारी जितेंद्रिय पुरुष का मुख कमल के समान तेजस्वी, उत्साही और स्फूर्तियुक्त होता है। इसलिये हरएक को ब्रह्मचर्य का पालन अवश्यमेव करना चाहिये।

आध्यात्मिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य की जो महिमा वर्णित की गई है थोड़ी देर के लिये हम उसको छोड़ भी देवें तो भी शरीर और मस्तिष्क के विकास और पुष्टि के लिये ब्रह्मचर्य कितना आवश्यक है यह पाठकों को आगे विदित हो जायेगा। इस अर्थ में ब्रह्मचर्य का अर्थ मुख्यतः अपने वीर्य की रक्षा करना और उसे शरीर और मस्तिष्क के लिये पुष्टिकारक बनाकर जीवन के लिये उपयोगी बनाना ही समझना चाहिये। लिखा है:—

मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्।

अर्थात् वीर्य का एक बिन्दु भी यदि व्यर्थ में पतन होता है तो मौत ही समझनी चाहिये और वीर्य के एक बिंदु के धारण करने से भी जीवन प्राप्त होता है। ऐसी अमूल्य निधि को जो नवयुवक व्यर्थ में गँवा देते हैं उनको मूर्ख के सिवाय और क्या कहा जा सकता है? ब्रह्म का अर्थ अन्न भी है और जो कुछ हम अन्न खाते हैं अथवा जिन अन्य पदार्थों का भक्षण करते हैं उन सबका सार तत्त्व अन्त में जाकर सात विभिन्न पदार्थों में परिवर्तित होता हुआ वीर्य के रूप में ही परिणित हो जाता है। आयुर्वेद वेत्ताओं ने लिखा है:—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जः शुक्रस्य संभवः ॥

अर्थात् जो कुछ हम अन्न खाते हैं पहले उसका रस बनता है, रस से रक्त (खून) बनता है उसके बाद वह मांस में परिणित होता है, मांस के बाद मेदस् (चर्बी) के रूप में जाता है। उसके बाद हड्डी बनती है, तब मज्जा बनता है और उसके बाद आठवें नम्बर पर जाकर वीर्य बनता है। इस विषय की विशद व्याख्या श्री महात्मा नारायण स्वामीजी ने एक स्थान पर बड़े सुन्दर ढंग से निम्न प्रकार से की है:—

वीर्य की उत्पत्ति—(१) किया हुआ भोजन अनेक परिवर्तनों के बाद प्रसाद और किट रस के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इनमें से किट तो मूत्र हो जाता है और प्रसाद रस व्यान वायु द्वारा शरीरस्थ रस (Simples) में पहुँचता है और शरीरस्थ रस की अग्नि में तप कर मल-भाग (कफ), स्थूल रस और सूक्ष्म-रस (रक्त) में विभक्त हो जाता है। (२) इनमें से मल भाग कफ में और स्थूलरस शरीरस्थ रस में मिल जाते हैं। सूक्ष्म रस रक्त के स्थान यकृत और प्लीहा में पहुँचता है और शरीरस्थ अग्नि से तप कर फिर तीन भागों में बंट जाता है:—

(३) मल भाग पित्त, स्थूल भाग=रक्त, सूक्ष्म भाग (मांस)। इसमें मल भाग पित्त और स्थूल भाग तो शरीरस्थ पित्त और रक्त में शामिल हो जाते हैं। सूक्ष्म भाग फिर तप कर तीन भागों में विभक्त हो जाता है।

(४) मल भाग (नासिका और नेत्र के मल), स्थूल भाग=मांस, सूक्ष्मभाग=मेद। इनमें से मलभाग और स्थूल भाग तो शरीर में अपने अपने स्थानों पर चले जाते हैं और सूक्ष्मभाग तप कर फिर तीन भागों में बंट जाता है।

(५) मलभाग=स्वेद पसीना, स्थूल भाग=मेद और सूक्ष्म भाग=अस्थि। मल भाग और स्थूल भाग तो शरीर में चले जाते हैं और सूक्ष्म भाग फिर तीन भागों में बंट जाता है:—

(६) मल भाग (केश), स्थूल भाग (अस्थि), सूक्ष्म भाग= मज्जा। मल भाग व स्थूल भाग तो शरीर में अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं और सूक्ष्म भाग के फिर पूर्ववत् तीन भाग हो जाते हैं:—

(७) मल भाग (नयन व त्वचा के स्नेह), स्थूल भाग=मज्जा और सूक्ष्म भाग=वीर्य। यहां पहुँच कर सूक्ष्म भाग दो भागों में बंट जाता है:—

(८) स्थूल भाग=वीर्य और सूक्ष्म भाग=ओज।

(९) ओज दो प्रकार का होता है:—पर और अपर (स्थूल)।

ओज की मात्रा—एक आदमी के शरीर में पर ओज केवल आठ बूंद होता है और अपर ओज दोनों हाथ से बनाई हुई अंजलि से आधा। जब वीर्य ओज बनाने तक सुरक्षित रहता है तब इसी ओज से ब्रह्मचारी के चेहरे आदि पर चमक और तेजस्विता आ जाती है। पर ओज का स्थान हृदय है। अपर ओज स्त्री पुरुषों के उत्पादक अङ्गों में पाया जाता है—

वीर्य और ओज में अन्तरः—(१०) वीर्य में रजो गुण रहता है, परन्तु ओज में सत्त्व गुण आ जाता है, इसलिये ओजस्वी ब्रह्मचारी विषय वासना की इच्छा से ऊपर हो जाता है। यही इन दोनों में मौलिक अन्तर है।

वीर्य कब उत्पन्न होता है—युवकों में १६ वर्ष से पहले वीर्य और युवतियों में १२ वर्ष से पहले आर्तव (रज) की उत्पत्ति नहीं होती। सोलह वर्ष से पहले जो श्वेत स्राव युवकों में होता है, वह शुक्र नहीं होता किन्तु अष्ठीला ग्रन्थि का स्राव या ऐल-

ब्यूमन आदि होता है। उसमें शुक्राणु नहीं होते हैं।

वीर्य का स्थान—पश्चिमी लेखक वीर्य का स्थान प्रायः अंडकोश कहा करते हैं परन्तु पूर्वी लेखक उसे समस्त शरीर में फैला हुआ बतलाते हैं। एक जगह लिखा है कि जैसे दुग्ध में घृत अथवा ईख में रस छिपा रहता है इसी प्रकार समस्त शरीर में वीर्य रहता है।

वीर्य बनने में कितना समय लगता है?—भोजन से बने हुए रस से वीर्य बनने में एक मतानुसार २४ घण्टे, दूसरे मतानुसार एक सप्ताह और तीसरे मतानुसार तीस (३०) दिन ९ घड़ी लगती हैं। रस से रक्त, रक्त से मांस आदि प्रत्येक के बनने में ५ दिन से कुछ अधिक समय लगता है।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में भी एक मास के अन्दर वीर्य बनने का विधान किया गया है और यह भी कहा गया है कि यही वीर्य पुरुषों में वीर्य और स्त्रियों में आर्तव रज कहलाता है।

वीर्य का मूल्य—यह अनुमान किया जाता है कि यदि एक मन भोजन की मात्रा हो तो उससे एक सेर रुधिर बनेगा और एक सेर रुधिर से दो तोला वीर्य। जिसका तात्पर्य यह है कि यदि शरीर से एक तोला वीर्य निकल जावे तो उसका अर्थ यह है कि ४० तोला रक्त कम हो गया अथवा उतनी शक्ति जाती रही जो आध सेर खून के अन्दर होती है। और इतनी शक्ति ४० दिन के भोजन से प्राप्त हुआ करती है। एक दिन के वीर्यपात से मनुष्य की १० दिन की आयु भी घट जाती है।

वीर्य की गतिः—मनुष्य के वीर्य की दो गतियां होती हैं (१) ऊर्ध्व गति जिसके द्वारा योगी और ब्रह्मचारी लोग वीर्य को व्यायाम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ऊपर चढ़ाते हैं अथात् वीर्य शरीर के

रक्त में मिल कर सारे शरीर में फैल कर शरीर को प्रभावित और बलिष्ठ कर देता है। इसी के फलस्वरूप युवक के डाढ़ी और मूछों के बाल निकलने लगते हैं और उसकी आवाज में अन्तर हो जाता है। मस्तिष्क में और शरीर में शक्ति का विकास होता है। हृदय उमंग से भर जाता है और चहरे पर तेज प्रकट होने लगता है।

(२) वीर्य की अधोगति तब होती है जब युवक जान कर अथवा अज्ञान से पतन करता है उसका वीर्य पतला हो जाता है और पेशाब के साथ अथवा स्वप्न में बिना उसकी इच्छा के निकलने लगता है। यह पतन की परिस्थिति मुख्यतः दो कारणों से होती है, दुष्ट भोजन और दुष्ट विचार।

दुष्ट भोजनः— वह भोजन है, जो ब्रह्मचर्य का बाधक है और जिससे वीर्य की ऊर्ध्वगति नहीं होने पाती, वह क्या है ? यही बात यहां बतलाई जाती है। बहुत खटाई, अधिक मात्रा में लालमिर्च और गर्म मसाला, बहुत-सी चटपटी चीजें जिस भोजन में शामिल हुआ करती हैं, वह दुष्ट भोजन कहलाता है। मांस, अण्डा, चाय, काफी, तम्बाकू, शराब, भंग, चरस आदि की गणना भी दुष्ट भोजन ही के अन्तर्गत है—डाक्टर कोवन और डाक्टर बरनार मैकफैडन ने भी इसका समर्थन किया है। इसमें चाय, तम्बाकू, शराब आदि उत्तेजना पैदा करके वीर्य को पतला करती है और मैदे की बनी रोटी आदि कब्ज पैदा करती है। इस प्रकार कब्ज हो जाने से पाखाना साफ नहीं होता है। जब मनुष्य मल निकालने के लिये देर तक बैठ कर बल करता है तो उसमें बड़ी आंतों (Large Intestine) में कम्पन उत्पन्न होता है और इस कम्पन से शुक्राशय (Seminal Vesicle) को भी धक्का लगता है जिससे वीर्य अपनी जगह छोड़ कर बाहर निकलने लगता है। इसलिये ऐसे भोजनों से सदैव युवकों को बचना चाहिये। एक विद्वान् ने एक जगह और कहा है

कि जब मनुष्य बहुत खटाई, इमली और चटनी आदि खाता है तब उससे भी वीर्य दूषित होने लगता है। उसने यह भी लिखा है कि यदि मनुष्य ऐसी चीजों का खाना नहीं छोड़ते तो उन्हें यह विचार छोड़ देना चाहिये कि वे शुद्ध वीर्य या उत्पादक शक्ति रख सकते हैं।

शराब में आलकोहाल होता है। मामूली शराब में १० फी सदी, ह्विसकी और बरांडी में ४० से ६० फीसदी तक। यह शरीर में पहुँच कर रुधिर, नाड़ी और मस्तिष्क के कार्यों में विघ्न डाल देता है। गोलकों को बिगाड़ कर शरीर के भीतर सूजन पैदा कर देता है।

तम्बाकू से भयानक हानि—२४ घण्टे में जितना तम्बाकू साधारण रीति से एक मनुष्य पी लिया करता है, उसमें जितना निकोटिन (Nicotin) नाम का विष होता है, उसे यदि मनुष्य एक ही बार इस प्रकार खा लेवे कि वह उसके शरीर के भीतर पहुँच जावे तो यह निश्चित है कि वह आदमी मर जावेगा। एक विद्वान् ने लिखा है कि बुरी आदतों में से पहली और अधिक बुरी आदत, जिससे मनुष्य की स्त्री-प्रसंग सम्बन्धी योग्यता में बट्टा लगता है, तम्बाकू पीने की है। फिर एक दूसरी जगह उसी विद्वान् ने लिखा है कि डाक्टरों के नजदीक तम्बाकू ही मुख्य वस्तु है जिससे मनुष्य सन्तान पैदा करने के अयोग्य हो जाता है। इसलिये यदि तुम पुंसत्व को रखना चाहते हो तो तम्बाकू पीने की आदत छोड़ दो।

दुष्ट विचार—वीर्य की अधोगति के दो कारण इससे पूर्व बताये जा चुके हैं। (१) दुष्ट भोजन, (२) दुष्ट विचार। दुष्ट भोजन का उल्लेख हो चुका है। दुष्ट विचार की बात यहां कही जाती है:—स्त्रियों का स्मरण, उनके रूपादि का वर्णन, उनके साथ खेलना, उनकी ओर देखना, उनसे एकान्त में बात-चीत करना,

विषय भोग के संकल्पों का बार बार मन में उठना, स्त्री प्राप्ति के लिये यत्नवान् होना तथा साक्षात् संभोग—इन सबको विद्वानों ने मैथुन ही कहा है। ये आठ प्रकार के मैथुन कहाते हैं।

जब मनुष्य के भीतर उपर्युक्त आठ बातों में से किसी एक से भी सम्बन्धित विचार उत्पन्न होते हैं तो उन्हीं विचारों को दुष्ट विचार कहते हैं। ये दुष्ट विचार समय समय पर जब मनुष्यों के भीतर उठते रहते तो इनका वीर्य पर दुष्ट विचार का प्रभाव पड़ता है। और इस प्रकार के इन विचारों के प्रभाव से वीर्य पतला होना शुरू हो जाता है और वीर्य सम्बन्धी समस्त रोगों का प्रारम्भ इसी वीर्य के पतले होने से हुआ करता है। इसलिये आवश्यक है कि विषय वासना की ओर प्रवृत्त करने वाले विचारों को मन में उत्पन्न ही न होने दिया जाये। इसके उत्पन्न होने के प्रायः दो कारण होते हैं। एक अश्लील खेलों सिनेमा आदि का देखना, दूसरे खराब नाटक आदि का पढ़ना दुष्ट विचारों की उत्पत्ति के कारण हैं—इनमें से किसी एक या दोनों कारणों के उपस्थित होने और बने रहने से मनुष्य के भीतर दुष्ट विचारों का जन्म हुआ करता है।

एक शङ्का और उसका समाधान:—उपर्युक्त आठ बातें, जिन्हें मैथुन कहा गया है, यदि सर्वथा निषिद्ध ठहराई जायें तो फिर मनुष्य गृहस्थ धर्म का पालन किस प्रकार कर सकता है? इस शंका का उत्पन्न होना स्वाभाविक है इसका समाधान यह है—(१) प्रथम तो ग्रन्थ विद्यार्थी-जीवन से सम्बन्धित है, इसलिये इसमें गृहस्थाश्रम की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। (२) द्वितीय जो गृहस्थ हैं उनके भीतर विषय वासना के विचार बार बार उत्पन्न ही नहीं होते क्योंकि इच्छा और आकांक्षा अप्राप्त वस्तु की हुआ करती है। गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुरुष दोनों मिल कर रहते हैं और इसलिये एक

दूसरे को प्राप्त हैं। फिर उनमें अप्राप्ति से जो इच्छा हुआ करती है उसके लिये कोई स्थान ही नहीं है। इसके सिवा जो गृहस्थ पुरुष और स्त्री इस आश्रम में रहते हैं और नियम के साथ गृहस्थ धर्म पालन की व्यवस्था रखते हैं, उन्हें धर्मशास्त्रकारों ने ब्रह्मचारी ही कहा है।

इस सम्बन्ध में सुकरात की शिक्षा:—एक व्यक्ति ने यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् सुकरात से पूछा कि स्त्री-प्रसंग कितनी बार करना चाहिये। सुकरात ने उत्तर दिया कि जीवन भर में एक बार। दुवारा पूछने पर उत्तर मिला कि वर्ष में एक बार। यदि कोई इससे भी शान्त न हो ऐसा प्रश्न करने पर सुकरात ने कहा कि महीने में एक बार करे। जब उससे पूछा गया कि यदि कोई इससे भी शान्त न हो तो सुकरात ने उत्तर दिया कि पहले उसे कफ़न आदि लाकर घर में रख लेना चाहिये उसके बाद जो इच्छा हो करे। स्पष्ट है कि सुकरात विषयाधिक्य को मृत्यु का कारण समझता है।

कीथ की शिक्षा:—कीथ नामक एक विद्वान् ने वीर्य रक्षा के सम्बन्ध में बड़ी उत्तम बात कही है। उसे हम उसी के शब्दों में बतला देना चाहते हैं।

"This seed (वीर्य) is marrow to your bones, food to your brains, oil to your joints and sweetness to your breath and if you are a man, you should never lose a drop of it, until you are fully thirty years of age, and then only for the purpose of having a child which shall be blessed from Heaven and really one of the inmates of the kingdom of Heaven by beeing born again," (Melvil Keith)

अर्थात् यह वीर्य तुम्हारी हड्डियों के भीतर का गूदा (मज्जा), तुम्हारे मस्तिष्क का भोजन, तुम्हारे जोड़ों के, लिए तेल और तुम्हारे श्वास का मिठास है। यदि तुम मनुष्य हो तो तुम्हें ३० वर्ष की आयु

प्राप्त करने से पहले उसकी एक बूँद भी नष्ट नहीं होने देनी चाहिये। और वह भी उस समय केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये। उस समय असंदिग्ध रीति से स्वर्गीय प्राणधारियों में से एक आकर तुम्हारे घर में जन्म लेगा। वात्स्यायन मुनि ने १६ से ७० वर्ष तक की आयु को युवावस्था कहा है:—

"आषोड़शात्सप्ततिवर्षपर्यन्तं यौवनम्"। (वात्स्यायन)

वात्स्यायनाचार्य और युवावस्था—एक समय था जब यहां ७० वर्ष तक की आयु युवावस्था में परिगणित होती थी, परन्तु आज थोड़े पुरुषों की समस्त आयु ७० वर्ष पहुँचती है। अधिकतर यहां के मनुष्य बुढ़ापे से पहले ही अपना जीवन-संग्राम समाप्त कर देते हैं। वेद की आज्ञा है कि बुढ़ापे से पहले मनुष्य को नहीं मरना चाहिये।

ब्रह्मचर्य से सम्बंधित कुछ और आवश्यक बातें:— श्री महात्मा नारायण स्वामी द्वारा लिखित सदैव स्मरण रखने और ध्यान देने योग्य कुछ एक बातों का अब यहां उल्लेख किया जाता है:—१-यदि इच्छा रहते हुए भी, कि ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कियाजाय, किसी नवयुवक के भीतर काम विकार उत्पन्न हो और जो चाहने लगे कि उत्पन्न वीर्य का नाश किया जावे तो उसे निम्न उपायों में से किसी एक-दो का आश्रय लेना चाहिये।

(क) शीतल जल से, चित्त के शान्त हो जाने तक, सिर को बराबर धोते रहना।

(ख) बहुत सा ठंडा पानी पी डालना।

(ग) अनिच्छा पर भी यत्न करके मूत्रत्याग करना और मूत्रेन्द्रिय को ठंडे जल से तर कर देना।

(घ) ईश्वर-चिन्तन में लग जाना और प्राणायाम करते हुए

"रुद्र" नाम जपना ।

(च) शरीर के नश्वर होने और संसार की असारता का बार बार स्मरण करना ।

(छ) दुखी व्यक्तियों और श्मशान आदि का बार-बार चिन्तन करना ।

(ज) किसी आश्चर्यवर्धक खेल में लग जाना या ऐसी ही कोई पुस्तक पढ़ने लगना ।

(झ) लुहार की धोंकनी की तरह जल्दी-जल्दी ५ मिनट तक श्वास लेना और निकालना ।

(ट) ३, ४ फरलांग दौड़ना या ५०, ६० बैठक कर डालना ।

(ठ) उपवास शुरू कर देना और चित्त के शान्त होने तक जारी रखना ।

नोट—इनमें से किन्हीं भी एक दो बातों का आश्रय लेकर उन्हें पूर्ण रीति के साथ कर डालने से चित्त शान्त हो जाया करता है ।

(ड) विशेष अवस्थाओं में, जब उपर्युक्त उपायों के काम में लाने से भी, विषय वासना कम न हो तो एक इलाज इसका यह भी है—सेर भर बर्फ को एक लम्बे कपड़े की ४, ५ तहों में रख कर उसे पहले पीठ की रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले भाग पर रक्खो और ५ मिनट तक रक्खा रहने दो । इसके बाद उसे गरदन पर और फिर गरदन के ऊपर सिर के पिछली ओर लगभग १० मिनट तक रक्खो, इससे उत्तेजना दब जावेगी, बर्फ फिर पीने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है ।

(२) स्वप्नदोषादि प्रमेह की प्रारंभिक अवस्था में निम्नांकित वस्तुएं औषधि रूप में काम में लानी चाहियें:—

(क) बरगद का ताजा दूध प्रातः और सायं दोनों समय पांच बूंद से शुरू करके एक बूंद प्रति सप्ताह बढ़ाते हुए नौ बूंद तक करके

६ सप्ताह तक इस्तेमाल करना चाहिए ।

(ख) अथवा पांच तोले बबूल की हरी फली (सेंगरी) लो और उन्हें टुकड़े टुकड़े करके साये में सुखा लो, जब बिल्कुल सूख जावे तब उसे खूब बारीक पीस कर चूर्ण तैयार करलो। उस चूर्ण को बरगद के दूध में एक सप्ताह तक भिगो रक्खो । इसके बाद उसे साये में ही सुखा डालो और फिर सम-मात्रा में असंगध के चूर्ण में उसे मिला लो, बस ओषधि तैयार हो गई—अब इसमें से एक एक माशा सुबह शाम गाय के दूध के साथ खा लिया करो। इससे प्रमेह दूर होता है और वीर्य की वृद्धि होती है।

(३) कभी २ धूप में या आग के सामने अधिक बैठने से वीर्य-रक्षा में बाधा पहुँचती है । जब कभी ऐसी सूरत आ जाय तो जननेन्द्रिय को एक-दो बार अधिक ठंडे जल से स्नान कराना चाहिये। स्नान का तात्पर्य यह है कि शिस्नु, और उसके आस पास का १० अंगुल परिमित स्थान शीतल जल से खूब तर कर देना। ८ दिन तक बराबर इस प्रकार के स्नान से स्वप्नदोषादि भी दूर हो जाते हैं।

वीर्य का मन के अधीन होना:—एक जगह कहा गया है कि मनुष्य के चित्त (मन) के अधीन उसका वीर्य होता है और वीर्य के अधिकार में उसका जीवन। इसलिये मन और वीर्य दोनों की तत्परता से रक्षा करनी चाहिए। यदि मन में दुष्ट विचार न आवें तो ऐसा मन वीर्य का रक्षक ही समझा जा सकता है।

वीर्य नाश के भयानक परिणाम:—डाक्टर स्मिथ ने राजयक्ष्मा तपेदिक के एक सहस्र रोगियों की इस उद्देश्य से जांच की कि मालूम किया जावे कि उसके इस जीर्ण ज्वर होने के कारण क्या क्या हैं। उनकी जांच का फल यह निकला:—

१८६ अति स्त्री प्रसंग से, १८३ हस्त-मैथुन से, २२० प्रमेह से, ४११ अन्य कारणों से योग १००० ।

ये अंक प्रकट करते हैं कि एक हजार में ५८९ रोगियों के रोग का कारण वीर्यनाश था ।

एक अमूल्य रत्न—नैष्ठिक ब्रह्मचारी पं० भगवान्देवजी ने इस विषय पर बड़ा सुन्दर लेख लिखा है । मनुष्य के शरीर में जितना मूल्यवान् पदार्थ वीर्य या शुक्र है उतना और कोई नहीं । वे नवयुवक कितने मूर्ख हैं जो अनजान में इसको नष्ट करते हैं । श्री आचार्य भगवान्देवजी ने अपने एक लेख में इसके सम्बन्ध में बड़े अच्छे उदाहरण दिये हैं । वह लिखते हैं:—

एक मनुष्य के हाथ में एक शीशी है जिसमें ५००) का बहुमूल्य इतर है । उससे पूछते हैं कि आप इसका क्या करोगे ? वह उत्तर देता है— गंदी नाली में डालूंगा । इसी प्रकार एक और मनुष्य है, जिसके पास एक बहुमूल्य रत्न हीरा है । उससे भी पूछते हैं कि इसका क्या करोगे ? वह उत्तर देता है कि इसको बारीक पीस कर मिट्टी में मिलादूँगा । इन दोनों से भी बढ़ कर मूर्ख और पागल हमारे देश के वे नवयुवक और बालक हैं जो वीर्य जैसे अमूल्य रत्न (इतर) को, जिसकी एक बूंद लाखों रुपयों से भी बढ़कर मूल्य वाली है, रात-दिन अपने हाथों से हस्त-मैथुन, पशुमैथुन, गुदामैथुन आदि पापों के द्वारा गंदी नालियों में डालते रहते हैं । यदि इसकी रक्षा करके ठीक समय पर खर्च किया जाये तो हनुमान्, भीष्म, दयानन्द, गांधी, सुभाष जैसे देवताओं को जन्म लेना पड़े । किन्तु कुसंग में फंस कर हमारे बच्चे किस प्रकार नष्ट होते हैं । उनमें एक सच्ची घटना आपको सुनाता हूँ । नाम लेना अच्छा नहीं । स्कूल के विद्यार्थी ने अपनी करुणाजनक, दुःख भरी सच्ची कहानी सुनाई । 'मैं जिस समय आठ-दश वर्ष का था कुसंग में फंस गया । कई

साथी स्वयं भी कुटेवों (कुचेष्टाओं) में फंसे हुए थे। मुझे भी वह गुप्त पाप (बदकारी) नीचों ने सिखला दिया। मैं कई वर्ष तक हस्त-मैथुन अर्थात् अपने हाथों अपना नाश करता रहा। मैं एक बहुत ही सुन्दर लड़का था। खाने पीने में भी चटोरा था। कई विद्यार्थी, जो मेरी कक्षा में थे, मेरे से आयु में बड़े और शरीर से तगड़े थे, वे बड़े नीच और गुण्डे थे वे ऊपर से मेरे से बड़ा प्रेम करते थे। मुझे अनेक बार पैसे देते। बाजार से अच्छी अच्छी चीजें खरीद कर खिलाते और जब मैं उनकी बात नहीं मानता तो वे मुझे डराते और धमकाते। शनैः २ उन्होंने ऐसे डोरे डाले कि मुझे अपने जाल में फँसा ही लिया। कई वर्ष तक मुझे खूब खराब किया। जब मैं इन बुराइयों में नहीं फंसा था, अपनी कक्षा में पढ़ने में प्रथम था, शरीर सुन्दर और स्वस्थ था। अब इन बुराइयों का फल मिलने लगा। रात में स्वप्न में सप्ताह में एक दो बार वीर्य-नाश हो जाता। पेशाब में भी गड़बड़ होने लगी। मस्तिष्क निर्बल हो गया। पढ़ने में मन नहीं लगता था, उठते बैठते अन्धेरी आती। कई वर्ष अपना नाश करते रहने के कारण शरीर भी थोथे वृक्ष की तरह निर्बल हो गया। देखने को मुख पर अभी सुन्दरता शेष थी, किन्तु युवा होने से पहले बुढ़ापा आ गया। घर वाले विवाह की चिंता में थे। मन बड़ा दुखी और उदास रहता था। मैं जीवन से निराश था। कई बार मन में आता था कि विष खा कर सदा के लिये सो जाऊँ, रेल के आगे कट कर मर जाऊँ, इस जीने से मरना भी अच्छा। गुण्डे विद्यार्थियों और नीच अध्यापक के चंगुल से निकलने का भी यत्न किया, किंतु वे बड़े धूर्त थे - उनके जाल में से निकलना कोई सहज बात थोड़ी ही थी। बार बार यत्न करने पर भी उसी दलदल में फंसा रहा। ऐसे विकट समय में डूबते को तिनके क सहारा एक आर्यसमाज के सदाचारी उपदेशक का सत्संग मिल उस सच्चे

देवता ने मुझे वार वार ब्रह्मचर्य और सदाचार की शिक्षा दी। अनेक ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी पुस्तकें उन्होंने दीं और पढ़ाईं। कई वर्ष लगातार घोर परिश्रम करके मुझे उन गुण्डों के चंगुल से निकाला। उनके सत्संग से मेरी सब कुटेव (बुराइयां) छूट गईं। प्रतिदिन नियमित व्यायाम करने और अन्य ब्रह्मचर्य-नियमों का पालन करने से फिर से शरीर में शक्ति और बल आने लगा। निराशा समाप्त हुई। सच्चा आनन्द क्या होता है, उसका स्वाद चखने को कुछ कुछ मिला। क्या ही अच्छा होता यह सत्संग मुझे वाल्यकाल (बचपन) में मिलता और मैं नष्ट होने से बच जाता।

इसी प्रकार देश के प्रायः सभी होनहार बच्चे कुटेवों (बुरी आदतों) में फंस कर नष्ट हो रहे हैं। प्यारे विद्यार्थियो! कोई नीच साथी तुम्हें यह गुप्त (गन्दी) शिक्षा दे कि मूत्रेन्द्रिय के हिलाने या मलने से आनन्द आयेगा, ऐसे नीच के मुँह को पीट देना। यदि तुमने किसी के सिखाने से मूत्रेन्द्रिय के साथ कोई खेल किया तो तुम्हारे जीवन का ही खेल विगड़ जायेगा। परमात्मा ने मूत्रेन्द्रिय और गुदा-इन्द्रिय को मूत्र-मल (पेशाव पाखाना) निकालने का द्वार बनाया है। इनसे भूल कर भी और कोई काम न लें। पेशाव पाखाना निकालना ही इनका एक मात्र कार्य है। मूत्रेंद्रिय के द्वारा ही शरीर का राजा वीर्य भी कुचेष्टा (बुराई) करने से निकलता है। इसलिये इसे कभी हाथ न लगाओ, हाथ लगाने से कुटेवों में फंसने का डर है। स्नान आदि के समय मैल अवश्य साफ कर लिया करो। मूत्रेंद्रिय का एक और भी काम है, संतान पैदा करना। वह २५ वर्ष के पीछे गृहस्थाश्रम का काम है। किंतु सच्चा विद्यार्थी तो महात्मा शुक्राचार्य के उपदेशानुसार (विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्) सच्चा ब्रह्मचारी ही होता है। जैसे दीपक तेल बत्ती के सहारे ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में बदल जाता है, ठीक उसी प्रकार

मनुष्य का वीर्य मस्तिष्क में पहुँच कर विचार-अग्नि का ईंधन बनता है, ज्ञानरूपी प्रकाश का संचार करता है, मनुष्य के अविद्या रूपी अन्धकार को मिटा कर मन और आत्मा को देदीप्यमान (प्रकाशित) करता है। प्यारे युवको! सारी शक्ति लगा कर शरीर के सार, शक्ति के भण्डार वीर्य की रक्षा करो। जैसे दूध में से मक्खन (घी) निकाल लिया जाये तो शेष छाछ का कोई मूल्य नहीं, गन्ने और सन्तरे का रस निकाल लिया जाये तो बचे हुए छिलके पैरों के नीचे रौंदे जाते हैं, जिस साईकिल में से हवा निकल जाये तो वह सवारी के काम की नहीं, जिस वृक्ष को कीड़े (घुन) ने खाकर खोखला कर रक्खा है उसके कड़ी, शहतीर आदि नहीं बन सकते। ऐसे ही जो मनुष्य के तत्त्व (कीमती जौहर) वीर्य को नष्ट कर देता है, ऐसा वीर्यहीन (थोथा) मनुष्य अपने सौभाग्य को नष्ट करके दु:ख-सागर में डूब मरता है।

ब्रह्मचारी का शरीर वज्र के समान होता है। उसकी नस-नाड़ियां फौलाद इस्पात से भी कठोर होती हैं। शरीर दृढ़ सुन्दर और सुडौल होता है, सारे शरीर और मुख-मंडल पर ऐसी लाली सुंदरता (चमक) और तेज आता है जिनके दर्शन करके मनुष्य का पेट नहीं भरता। पाठको! इस ब्रह्मचर्य के आनन्द को खूब लूटिये और इस पवित्र सन्देश को देश के सब विद्यार्थियों और युवकों तक पहुँचाइये।

ब्रह्मचर्य के साधन—

(१) प्रातःकाल उठनाः—जो लोग प्रातः चार बजे उठ कर ईश्वर का चिंतन करते हैं वे रोग रहित और स्वस्थ रहते हैं। उनकी बुद्धि तीव्र हो जाती है। जो आलसी बन कर उस अमृत वेला (उषा काल) में सोता है उसे स्वप्न-दोष आदि रोग हो जाते हैं, क्योंकि गन्दे स्वप्न प्रायः चार बजे के बाद ही आते हैं इसलिये

चार बजे के बाद सोना या लेटे रहना ब्रह्मचर्य के लिये घातक है।

उषा काल में उठो उषर्बुध, बनो "सूर्य" सम तेजस्वी।
बल, विद्या में सुखद स्वास्थ्य में, बढ़ो वीर वर वर्चस्वी॥

(२) तांबे के लोटे में रात में रक्खा हुआ शुद्ध जल उठने के थोड़ी देर बाद कम से कम पाव भर पीना चाहिये। इस उषा-पान से वीर्य सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं, बवासीर नहीं होती, कब्ज दूर होता है और शौच खुल कर आता है जिससे ब्रह्मचर्य साधन में बड़ी सहायता मिलती है।

(३) मल मूत्र के वेग को कभी नहीं रोकना चाहिये, क्योंकि इनके रोकने से अनेक रोग हो जाते हैं और मल-मूत्र की उष्णता से वीर्य नाश भी हो जाता है।

(४) भोजन हमेशा सतोगुणी और स्वल्प होना चाहिये जो शीघ्र पचने वाला हो। रात के भोजन और सोने के समय में कम से कम तीन घण्टे का अन्तर होना चाहिये। गर्म दूध पीकर हाल ही सोना अथवा भर-पेट भोजन करके तुरन्त सो जाना स्वप्न-दोष का मुख्य कारण बन जाता है इसलिये दूध भी भोजन के साथ ही दो या तीन घण्टे पहले ही लेना बहुत हितकर है। तेल, खटाई, मिर्च, मिठाई और तेज़ मसाले के पदार्थों को कभी नहीं खाना चाहिये।

(५) दिन में किसी न किसी प्रकार का व्यायाम कर लेना सब मनुष्यों के लिये और विशेषकर विद्यार्थियों के लिये बड़ा लाभकारी है। बात यह है कि विद्यार्थी अथवा अध्यापक अधिकतर बैठे ही बैठे पढ़ने पढ़ाने का काम किया करते हैं, इसलिये उनको कब्जी हो जाना साधारण बात है और पेट की कब्जी ब्रह्मचर्य की सख्त दुश्मन है इसलिये दिन में यदि प्रातः या सायंकाल अथवा दोनों समय पर्याप्त व्यायाम कर लिया जाये तो रात में नींद भी अच्छी आयेगी, कब्जी भी नहीं रहेगी और ब्रह्मचर्य रक्षा में बहुत सहायता

भी मिलेगी।

(६) **शीर्षासन:**—शीर्षासन ब्रह्मचर्य का प्राण है और ब्रह्मचर्य का एक उत्कृष्ट साधन है। प्रात:काल शौचादि के पश्चात् किसी दीवार के सहारे सर के नीचे कुछ मोटा गुद्गुदा गद्दा रख कर उल्टे खड़े होने का अभ्यास धीरे धीरे वढ़ाना चाहिये और अन्य व्यायामों से पहले इसे करना चाहिये। इससे रक्त का प्रवाह सिर में और मस्तिष्क में विशेष रूप से होता है और वीर्य की ऊर्ध्वगति होने में वड़ी सहायता मिलती है। जिसे स्वप्न-दोष का रोग हो उसे सायंकाल भी शीर्षासन और प्राणायाम देर तक करना चाहिये, इससे वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है और वीर्य सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। शीर्षासन एक मिनट से धीरे धीरे वढ़ा कर १५ मिनट तक किया जा सकता है। पहले ही दिन अधिक करना या एक साथ किसी दिन अधिक वढ़ा देना हानिकर होता है। शीर्षासन से जहां ब्रह्मचर्य के लिये लाभ है वहां इससे रक्त-शुद्धि भी होती है और नेत्र-ज्योति भी वढ़ती है।

(७) **शयन:**—हमेशा अकेले सोओ। भूल कर भी किसी के साथ मत सोओ, यहां तक कि सगे भाई के साथ भी न सोओ। सोने से पूर्व लघुशंका (पेशाब) करो। हाथ, पैर, मुख शीतल जल से धोओ। मूत्रेन्द्रिय का स्नान भी बहुत लाभदायक है। तौलिया से हाथ पैर पोंछ लो। कुरता धोती आदि सब कपड़े उतार दो। एक लंगोटा बँधा रहना चाहिये। एक दरी का विछौना रख सदा भूमि पर सोओ। यदि जाड़े में न रह सको तो एक कम्वल और डाल लो। रूई के गद्दे व कोमल (नरम) विस्तर पर कभी न सोओ। सीधा और पेट के वल (ऊंधे) कभी न सोओ, ब्रह्मचारी को दाईं करवट सोना चाहिये। सोते समय पैर के ऊपर पैर न रक्खो, खुले स्थान पर जहां शुद्ध वायु आता जाता हो सोना चाहिये। खिड़की, जंगले

आदि बन्द न करो, मुख ढक कर कभी न सोओ। सिर के नीचे कुछ ऊँचा रक्खो। ईश्वर का चिन्तन करके गायत्री वा ओ३म् का जप करते हुए सायंकाल दश बजे से पूर्व ही सो जाओ। ६ घण्टे से अधिक न सोओ। एक नींद सोने का अभ्यास करो। यदि बीच में किसी कारण से आँख खुल जाये तो तुरन्त उठकर लघुशंका जाओ, आलस्य न करो। यदि रात्रि अधिक शेष हो और सोना ही पड़े तो फिर मुँह धोकर ईश्वर का चिन्तन करते हुए सो जाना चाहिये। न सोओ तो अच्छा है। सारे दिन काम में लगे रहो, निठल्ले न बैठे रहो। सायंकाल व्यायाम भी इतना करो कि दिन के कार्य और व्यायाम से इतने थक जाओ कि रात्रि को एक ही गहरी नींद आये। नींद खुलने पर आलस्य में पड़े न रहो। अपने नित्य कर्म में लग जाओ। सायंकाल यदि ठीक समय पर सोओगे तो प्रातःकाल ठीक समय पर उठ सकोगे। देर तक जागने से शरीर और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ कर वीर्यनाश होता है। दश बजे के पीछे पढ़ने के लिये भी न जागो। यदि रात्रि में पढ़ना ही है तो प्रातः-काल उठकर पढ़ो। उस समय थोड़ी देर में अधिक याद होता है। और फिर भूलता भी नहीं। सारे दिन परिश्रम करने से शरीर और मस्तिष्क थक जाता है। इन्द्रियां थकी मांदी होती हैं इसलिये विश्राम चाहती हैं। दश बजे के पीछे जगना और पढ़ना—मस्तिष्क और शरीर को निर्बल करना तथा अपनी और निद्रा की मिट्टी खराब करनी है। किंतु यह ध्यान रहे कि दिन में कभी न सोओ, क्योंकि सोने के लिये प्रभु ने रात्रि ही बनाई है।

(८) **सत्संग और स्वाध्यायः**—जो उत्तम विद्वान्, धर्मात्मा और सदाचारी हैं, उन्हीं के समीप बैठो, उन्हीं का विश्वास और सत्संग करो। भव-सागर से पार तारने वाले कोई तीर्थ हैं तो साधुमहात्मा ही हैं। किसी कवि ने कहा है—

संगति कीजै साधु की हरै और की व्याधि।
ओछी संगत नीच की आठों पहर उपाधि॥

कुसंग का फल नरक है और सत्संग से मोक्ष तक की प्राप्ति होती है।

उदाहरण के लिये सुनिये:—

(१) महर्षि दयानन्द को अमीचन्द एक गाना सुनाता है। उसके गाने को सुन कर ऋषिवर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा—अमीचन्द तू रत्न है किन्तु कीचड़ में पड़ा है, इतना कहना था कि शराबी और वेश्यागामी अमीचन्द सब पापों को छोड़ कर एक सच्चा आर्य बन जाता है और सारा जीवन आर्यसमाज के प्रचार-कार्य में लगाता है। (२) अजमेर में महर्षिजी सिपाही लेखराम को उपदेश देते हैं कि २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहना। वह २५ की जगह ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करता है। ऋषि का कार्य पूरा करने के लिये प्राण तक न्योछावर कर देता है। सत्संग की बड़ी महिमा है। इसे पाकर डाकू भी महात्मा बन जाता है और पापी भी सुधर जाता है, इसलिये कुसंग से बचो। स्वांग, नाच, सिनेमा, थेटर, रासलीला, रामलीला, ड्रामा, नाटक ये सब नष्ट करने वाले हैं। इन्हें भूल कर भी न देखो। इनसे बढ़ कर और क्या कुसंग हो सकता है? पांचों विषयों और अष्ट मैथुन से बचने के लिये धार्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय करो। नौविल, उपन्यास, स्वांग आदि की गन्दी पुस्तकें भूल कर भी न पढ़ो। आदर्श ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्दजी के लिखे सत्यार्थप्रकाश और संस्कार-विधि आदि ग्रन्थों को, जो ब्रह्मचर्य की महिमा से भरे पड़े हैं, श्रद्धापूर्वक बार बार पढ़ो। वह वीर्य रक्षा का कौन सा साधन है, जिस पर उन्होंने प्रकाश न डाला हो। उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय मानो ब्रह्मचर्यामृत के घूंट भरना है। वह

ब्रह्मचारी ही क्या है जिसने उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय न किया हो। विना स्वाध्याय के मनुष्य के विचार शुद्ध और पवित्र नहीं होते। विना विचारों की शुद्धि के वीर्य रक्षा असम्भव है। इसलिये प्रतिदिन सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करो। उनको वार वार पढ़ो और उनके अनुसार चल कर लाभ उठाओ।

वीर्य नाश के परिणाम:—"ब्रह्मचर्य" नामक पुस्तक में स्वामी शिवानन्दजी ने वीर्यनाश के दुष्परिणाम इस प्रकार बताये हैं:—(१) जिसका ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हुआ है, वह सदा डरता रहता है, वड़े आदमी की आँख के साथ आँख मिला नहीं सकता, (२) निरुत्साही हो जाता है, (३) धीर, वीर और आनन्द प्रसन्न बालक भी वीर्यभ्रष्टता के कारण हीन और दीन वन जाता है, (४) मनुष्य क्रूर, सूखा, चिड़चिड़ा और उदास बनता है, (५) कोई दृश्य रोग न होने पर भी प्रतिदिन क्षीण और दुर्बल होता जाता है, (६) सदा रोगी रहता है और इसी कारण काम भाव भी बढ़ता है। "भोग और रोग" साथ साथ ही रहते हैं, (७) पुरुषार्थ करने की हिम्मत नहीं रहती, (८) निराशा, चिंता, भीति आदि दुर्गुण बढ़ते हैं, चित्त की दुर्बलता, चंचलता और मलीन विचारों की प्रधानता होती है, (९) शृंगार प्रधान नाटक, उपन्यास आदि पढ़ने, अश्लील चित्र देखने और नाटक, तमाशा और अश्लील सिनेमा आदि देखने की कामना बढ़ती है, (१०) सदा कुसंगति में जाने और एकान्त में बैठने की प्रवृत्ति बढ़ती है, स्वयं ही दुराचार में प्रवृत्ति होती है, (११) दूसरों की ओर बुरी दृष्टि से देखने को दिल करता है, (१२) चेहरे पर फोड़े फुंसियां होती हैं, (१३) चेहरे पर कालिमा बढ़ती है, स्वप्न-दोष होने लगता है, (१४) वीर्य प्रतिदिन पतला हो जाता है, (१५) इन्द्रियों में शिथिलता होती है, (१६) मूत्र में वीर्य चला जाता है, (१७) नाना प्रकार के वीर्य दोष उत्पन्न होते हैं, (१८) सब प्रकार

के पुरुषत्व का नाश हो जाता है, (१९) मस्तिष्क की शक्ति अर्थात् दिमागी शक्ति अत्यन्त क्षीण होती है, (२०) सिर में दर्द मस्तक हलका सा होना, स्मरण शक्ति की क्षीणता, बुद्धि की मंदता, पागलपन, भ्रम आदि उत्पन्न होते हैं, पागलखानों में जितने पागल हैं उनमें १०० में ९६ पागल वीर्यनाश के कारण बने होते हैं, इतना वीर्यनाश का पागलपन के साथ संबन्ध है, (२१) चक्कर आना, चक्कर आकर गिर जाना आदि भी वीर्य-क्षीणता का ही परिणाम है। (२२) कोष्ठ-बद्धता अर्थात् कब्जी, शौच शुद्धि न होना, शौच पतला होना और बारंबार होना आदि सब दोषों का कारण वीर्य-क्षीणता ही है, (२३) बवासीर आदि रोगों का यही मूल कारण है, (२४) निद्रा न आनी अथवा बहुत सुस्ती आनी, कभी निद्रा पूर्ण होने का सौख्य न मिलना आदि सबका उक्त कारण ही है, (२५) बहुत भूख लगनी, खाने के पश्चात् भी भूख रहनी, अन्न का अपचन होना, पेट और अंतड़ियों की कमजोरी इसी कारण से होती है, (२६) चटपटे पदार्थों की अभिलाषा होनी और सात्विक भोजन की इच्छा न होनी, (२७) खटाई और नमकीन पदार्थ बहुत प्रिय लगने, (२८) छाती की कमजोरी, कफ, क्षय आदि रोगों की उत्पत्ति, (२९) प्रतिज्ञा पालन में दृढ़ता न रहना, मन की कमजोरी बढ़ जानी, (३०) नाड़ी की अनियमित गति होनी, (३१) संधियों में ढीलापन बढ़ जाना, (३२) शरीरावयवों की बधिरता होनी। (३३) अवयवों में कंप उत्पन्न होना, (३४) हाथ पांव में उष्णता की न्यूनता अथवा अधिकता होनी, (३५) विना कारण शरीर के भागों में अकाल में पसीना आना, (३६) सर्दी गर्मी सहन न होनी, (३७) सब शरीर निःसत्व होना, (३८) शरीर में टेढापन उत्पन्न होना, (३९) खड़ा रहने की भी शक्ति न रहनी, (४०) छाती में गहराई उत्पन्न होनी, (४१) वृषणा की वृद्धि होनी तथा वहां के दोष बढ़ जाने, (४२) मुख

में दुर्गंध, पसीने में दुर्गन्ध होना, दांतों के मूलों में सूजन और पूम की उत्पत्ति होनी, (४३) शरीर सजाने की रुचि बढ़ जानी, (४४) बातें बहुत करनी, परन्तु कर्म कुछ भी न होना, (४५) कोशों की क्षीणता, (४६) केश गिर जाने, (४७) आवाज में माधुर्य न रहना, (४८) पाप भावना की जागृति होनी, (४९) प्रकाश सहन न होना, (५०) आंखों के चारों ओर काला रंग बढ़ जाना, (५१) गालों पर लाल रंग न होना, (५२) शरीर का भार कम हो जाना, (५३) चेहरे पर हास्य न होना इत्यादि अनेक दोष वीर्य-क्षीणता के कारण उत्पन्न होते हैं।

वीर्य-रक्षा का राष्ट्रीय महत्त्व:—इस सम्बन्ध में श्री-दत्त भारद्वाज अपने एक लेख में इस प्रकार लिखते हैं:—

निस्सन्देह मनुष्य की शारीरिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन या वीर्य-रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, वे कदापि दीर्घजीवी नहीं हो सकते और न उनसे कोई बड़ा कार्य ही सम्पन्न हो सकता है। व्यक्तियों से ही राष्ट्र बनता है। जिस राष्ट्र के नागरिक जानते हुये या अनजान में ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं करते, उसका पतन दिन प्रतिदिन होता चला जाता है।

आज भारत के सामाजिक जीवन में ब्रह्मचर्य की जितनी उपेक्षा हो रही है, उतनी यूरोप व अमेरिका के किसी देश में नहीं है। ब्रह्मचर्य के अभाव में हम दिन प्रतिदिन रसातल की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। आज कालेजों के उच्च शिक्षा प्राप्त युवक और युवतियां 'ब्रह्मचर्य' शब्द की जिस प्रकार हंसी करते हैं, उसी से यह अनुमान लग सकता है कि आज भारत में ब्रह्मचर्य की कितनी अवहेलना हो रही है। यूरोप व अमरीका के उन्नत देशों में जहां २१ वर्ष से कम आयु में विवाह करना कानूनन बन्द है तथा जहां

उन्नति के शिखर पर पहुंचने के इच्छुक युवक और युवतियां ३० या ३५ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रह कर अपने मानसिक तथा शारीरिक विकास में सतत प्रयत्नशील रहते हैं, वहां भारत में बच्चे की दो वर्ष की आयु होने पर ही दूल्हा व दुल्हिन की बातें सिखानी प्रारम्भ कर दी जाती हैं। भारत में अधिकांश युवकों के १४ वर्ष की आयु से लेकर १८ वर्ष की आयु तक तथा लड़कियों के १२ वर्ष की आयु से १६ वर्ष की आयु तक विवाह सम्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हेय अवस्था में किस प्रकार भारत के युवकों के शारीरिक तथा मानसिक विकास की कल्पना की जा सकती है। भारत की जनता और सरकार इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रही है।

ब्रह्मचर्य की महिमा अपरम्पार है। ब्रह्मचर्य पालन के कारण ही प्राचीन भारत में किसी व्यक्ति की आयु १०० वर्ष से कम नहीं होती थी तथा अनेक साधु-संन्यासी ब्रह्मचर्य के बल से योग-साधना द्वारा अत्यन्त दीर्घ जीवन या अमरत्व प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्य के बल पर ही लक्ष्मण ने महाबलशाली मेघनाद को परास्त किया। इसी बल पर भीष्म पितामह को कोई योद्धा परास्त नहीं कर सका। ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही हनुमानजी को अमरत्व प्राप्त हुआ।

यदि हम भारत के वर्तमान स्वातन्त्र्य संग्राम के इतिहास के पृष्ठों की ओर ध्यान देकर विचार करें, तो उसमें भी हमें ब्रह्मचर्य की महिमा स्पष्ट झलक पड़ती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक साधारण वकील थे, परन्तु जब से उन्होंने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, तभी से उनकी प्रतिभा में अभूतपूर्व विकास देखने में आया। ब्रह्मचर्य से गांधीजी की मानसिक शक्ति का अलौकिक विकास हुआ, जिसके बल पर आप देश की एक हजार साल की गुलामी की समस्या को सुलझाने की अभूतपूर्व योजनायें बनाने तथा नेतृत्वहीन राष्ट्र का नेता बनने में सफल हुये।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने देश की आजादी के लिये अपनी तमाम शक्ति को लगाने के लिये ब्रह्मचर्य का पालन किया, क्योंकि उनकी यह निश्चित धारणा थी कि ब्रह्मचारी न रहने की स्थिति में मस्तिष्क की प्रतिभा नष्ट हो जाती है। ब्रह्मचर्य के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए ही भारत के वर्तमान कर्णधार पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पत्नी का स्वर्गवास होने के बाद आज तक विवाह नहीं किया। ब्रह्मचर्य के बल पर ही आप अपने स्थिर मस्तिष्क से अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में सफल हो रहे हैं। ब्रह्मचर्य के बल पर ही स्वामी शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यन्त महान् कार्य करके दिखलाये।

कुछ भी हो, ब्रह्मचर्य से मनुष्य को अपार शारीरिक तथा मानसिक शक्ति मिलती है तथा ब्रह्मचर्य का त्याग करने से मनुष्य दिन प्रति-दिन पतन की ओर अग्रसर होता चला जाता है। निस्सन्देह ब्रह्मचर्य जीवन है और विलासिता निश्चित मृत्यु है। भारत की प्रारम्भिक गुलामी का एक मुख्य कारण महाराजा पृथ्वीराज का अत्यधिक विलासितामय जीवन में लिप्त हो जाना था।

अन्तिम निष्कर्षः—इस प्रकार हमने देख लिया कि ब्रह्मचर्य का पालन जहां एक ओर देश और राष्ट्र की रक्षा के लिये अत्यन्त आवश्यक है वहां दूसरी ओर वह नवयुवकों के शरीर, मन, बुद्धि और इंद्रियों के विकास के लिये परम हितकारी है। जो नवयुवक इसका ध्यान नहीं रखते वे जहां अपने स्वास्थ्य और जीवन का सर्वनाश करते हैं वहां राष्ट्र के लिये भी भार रूप सिद्ध होते हैं। अतः जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया था प्रत्येक नवयुवक को स्मरण रखना चाहिये कि—

"मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्"।

द्वितीय अध्याय

प्राणायाम

नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री पं० भगवान्देवजी ने प्राणायाम की विधि पर वीर्य की ऊर्ध्वगति के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर लिखा है:—

पहले सिद्ध आसन से बैठ जाओ। उसकी विधि इस प्रकार है। बायें पैर की एड़ी अण्डकोष और गुदा इन्द्रिय के बीच में जो स्थान है उस पर लगाओ। यह वह स्थान है जहां से वीर्य वाहक नाड़ियां जाती हैं। इन ही में से गुजर कर वीर्य बाहर निकल जाता है इसलिये पैर की एड़ी को इन नाड़ियों पर दबा कर लगाना चाहिए। दायें पैर की एड़ी मूत्र इंद्रिय के ऊपर, जहां बाल उगते हैं, लगाओ, दोनों पैरों के गट्टे मिले हुए हों। दोनों पैरों के घुटने भूमि पर लगे हुए हों, शिर, ग्रीवा (गर्दन), मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) सब सम रेखा में सीधी रहनी चाहिएं। एक कपड़े की छोटी गद्दी बना कर गुदा के नीचे रख लो। जिससे वीर्य-वाहक नाड़ियों पर अधिक बल (जोर) पड़े। दोनों हाथों को तान कर दोनों घुटनों पर रक्खो। शरीर सारा खिंचा हुआ होना चाहिये। छाती तनी हुई तथा आगे को उभरी हुई हो। ठोड़ी का झुकाव थोड़ा सा छाती की ओर हो। केवल लंगोट लगा कर आसन में बैठो तो अच्छा रहेगा। यदि केवलमात्र इस सिद्धासन का ही अभ्यास किया जाये तो यह भी वीर्य रक्षार्थ तथा स्वप्नदोष को दूर करने में अत्यन्त हितकर है। प्राणायाम करने से पूर्व यदि बायाँ स्वर चलता हो तो अच्छा है। जिधर से वायु आता हो उधर मुख रक्खो जैसे अत्यन्त वेग से वमन (कै) होता है और अन्न जल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण

(श्वास) को बल से बाहर फेंक दो। एक ही बार निरन्तर एक श्वास में सारी वायु बाहर निकल जाय, झटके दे दे कर नहीं। श्वास निकालने से पूर्व नाभि के नीचे से मूत्र इंद्रिय को ऊपर संकोच करो (खींचो)। पहले हृदय का वायु बल से बाहर निकालो फिर ऊपर के फेफड़े का श्वास निकाल कर खाली करना चाहिये, फिर उदर (पेट) को खाली करना। किंतु ध्यान रक्खो—सारा प्राण एक श्वास में ही बाहर निकल जाये। श्वास तोड़ तोड़ कर कभी न निकालो श्वास को लम्बा करके तथा निरन्तर गति देते हुए एक ही बार बाहर निकाल दो। जब श्वास सारा हृदय, फेफड़ों और उदरादि का बाहर निकल जाये तो उदर (पेट) को अन्दर की ओर खींचे रहो। श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोको। जब घबराहट हो तब धीरे २ वायु को ले लो, किंतु अन्दर नहीं रोको। यह एक प्राणायाम हुआ। फिर उसी प्रकार दूसरा प्राणायाम फिर बाहर निकाल कर बाहर ही रोक कर करो। इसी प्रकार तीन प्राणा-याम करो। अन्दर नहीं रोको। पहिले बाह्य कुम्भक (बाहर रोकने) का ही अभ्यास करो। बाह्य विषय का बाह्य कुम्भक का अभ्यास कम से कम एक वर्ष तक करना चाहिये। यही पहला प्राणायाम है। जब तक यह सिद्ध न हो जाय तब तक दूसरा प्राणायाम (आभ्यन्तर) जो अन्दर रोकने का है, इसे आभ्यन्तर कुम्भक कहते हैं, नहीं करना चाहिये। लोग अन्दर और बाहर रोकना दोनों एक साथ आरम्भ कर देते हैं। इसलिये लाभ तथा उन्नति नहीं होती जब पहले प्राणायाम में सफलता मिल जाये तब दूसरे का अभ्यास करना चाहिये। एक मास तक तीन प्राणायाम प्रातःकाल करो और तीन प्राणायाम सायंकाल करो। फिर शनैः शनैः प्रतिमास संख्या बढ़ाते जाओ। यदि गो-दुग्ध, घृत व अन्य पौष्टिक भोजन पर्याप्त खाने को मिले तो दोनों

समय अभ्यास करना चाहिये और संख्या बढ़ाते २ इक्कीस (२१) प्राणायाम तक कर सकते हैं। पौष्टिक भोजन का अभाव (कमी) हो तो धीरे २ संख्या बढ़ाओ। कभी शक्ति से अधिक न करो। न ही नाक पकड़ कर अधिक देर बलात् (जबरदस्ती) रोकने का यत्न करो। इस प्राणायाम में आरम्भ से लेकर अन्त तक एक विशेष क्रिया का ध्यान रखना तथा अभ्यास करना है। श्वास निकालने से पूर्व नाभि के नीचे जो मूलाधार को खींचा था, उसे खींचे ही रखना है। ढीला नहीं छोड़ना। और इसे खींचे रखने का ही तो अभ्यास करना है। जितनी देर वा जितने प्राणायाम करो मूलाधार को खींचे ही रक्खो। पहले पहले कुछ कठिनाई वा कष्ट प्रतीत होगा, किंतु कुछ दिन के अभ्यास से ठीक हो जायगा। मूलाधार को खींचने से मूत्रेंद्रिय तथा गुदा भी खिंची रहेगी और वीर्यकोष जहां वीर्य ठहरता है वह भी ऊपर को खिंचा रहेगा। मूलाधार खींचते समय मन से नाभि के नीचे ध्यान करे कि हम अपने वीर्य को ऊपर खींच रहे हैं। सारे प्राणायाम में यह ही ध्यान करते रहो। कुछ दिन के अभ्यास से वीर्य ऊपर को यथार्थ में खिंचने तथा जाने लगेगा और जब आप निरन्तर अभ्यास करते २ इक्कीस (२१) प्राणायाम तक पहुँच जायेंगे तो वीर्य की गति पूर्ण तथा ऊर्ध्व हो जाएगी। वीर्य ऊपर को मस्तिष्क की ओर बहने लगेगा। आप ऊर्ध्वरेता हो जायेंगे। आपका वीर्यकोष खाली हो जाएगा और इसमें वीर्य आना ही बन्द हो जायेगा फिर स्वप्नदोष कैसे होगा? आपकी इच्छा के बिना वीर्य का एक बिंदु भी शरीर से बाहर नहीं निकल सकता। फिर कैसा स्वप्न-दोष और प्रमेह रोग। किंतु यह निरन्तर दीर्घ काल तक श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से होगा। आप इसे दूसरी प्रकार से भली प्रकार समझ जायेंगे। जब आप लघु-शंका (पेशाब) करने जावें और मूत्र त्याग (पेशाब) करते समय

बीच में ही नाभि के नीचे के भाग मूत्रेंद्रिय को खींचो। गुदा इंद्रिय और मूत्रेंद्रिय भी एक साथ खिचेंगी और इससे मूत्र निकलना एक दम वन्द हो जायेगा। और जब तक आप इसे ढीला न छोड़ें एक बूंद भी मूत्र बाहर नहीं निकल सकता। यह अनुभव आप करके देख लें या जब कुछ मास तक आप प्राणायाम का अभ्यास कर लेंगे और आप को मूलाधार खींचे रहने का अभ्यास पक्का हो जायगा तब तक आप देखेंगे कि स्वप्नों और स्वप्न-दोषों की संख्या स्वयं घटती चली जायगी। रात्रि को ऐसी अवस्था भी आयेगी कि कभी आपको स्वप्नदोष होने का अवसर आयेगा तो अर्धनिद्रा में आप मूलाधार को खींच लेंगे और आपकी आँख खुल जायेगी। आप स्वप्नदोषों से बच जावेंगे। आपकी विजय होगी। यदि सोने से पूर्व खाली पेट ही यह प्राणायाम किया जाय तो शीघ्र लाभ होगा। आपकी विजय और हार आपके अभ्यास पर है। इस प्राणायाम की जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है, सब ऋषियों और विशेषतया पूज्य-पाद महर्षि दयानन्द की कृपा है जो ऐसी विद्या इस गिरे हुए संसार को मिली है। इस प्राणायाम के अभ्यास से जहाँ स्वप्नदोषादि रोग दूर होंगे वहां शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम और जितेन्द्रियता की प्राप्ति होगी। सब शास्त्र और विद्याओं को थोड़े ही काल में समझ कर विद्यार्थी उपस्थित कर लेगा। इसका अभ्यास सब युवकों, विद्यार्थियों तथा ब्रह्मचर्य-प्रेमियों को करना चाहिये इससे मन, इन्द्रियों के सब दोष क्षीण और दूर हो जाते हैं और मनुष्य इनको अपने वश में कर लेता है। यह वीर्य रक्षा का अनुपम साधन और परम ओषधि है।

प्राणायाम से अन्य लाभ

श्री महात्मा नारायण स्वामीजी ने ईशोपनिषद् के भाष्य में प्राणायाम विषय पर लिखा है:—

प्राणायाम से शारीरिकोन्नति किस प्रकार होती है, इस बात के जानने के लिये एक दृष्टि, शरीर के अन्दर होने वाले अनिच्छित कार्यों में से, हृदय फेफड़ों के कार्यों पर, डालनी होगी।

हृदय का स्थूल कार्य

इस शरीर में दो प्रकार की अति सूक्ष्म नाड़ियां हैं। एक तो वे हैं जो समस्त शरीर से हृदय में आती हैं और दूसरी नाड़ियां वे हैं, जो हृदय से समस्त शरीर में जाया करती हैं। पहली नाड़ियां शिरा और दूसरी धमनियाँ कहलाती हैं। शिराओं का काम यह है कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें। हृदय उस रक्त को शुद्ध करता है। रक्त अशुद्ध क्यों होता है, उसका हेतु यह है कि समस्त शरीर के व्यापारों में इसका प्रयोग होता है और प्रयोग में आने से अशुद्ध हो जाता है। उसमें कुछ मैलापन आ जाता है। शुद्ध रक्त में ओषजन (Oxygen) काफी मात्रा में रहता है, परन्तु काम में आने से जब यह अशुद्ध हो जाता है, तब उसमें ओषजन की मात्रा नाममात्र रह जाती है और उसकी जगह एक विषैली वायु (Carbonic Acid Gas) रक्त में आ जाती है और इसी परिवर्तन में रक्त का रङ्ग मैला स्याही माइल सा हो जाता है।

फेफड़े का काम

हृदय में जब अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा पहुँचता है, तो हृदय उसे फेफड़ों में भेजता है। यहीं से फेफड़े का काम आरम्भ होता है। फेफड़ा स्पञ्ज की भांति असंख्य छोटे-छोटे कोशों (cells) का समुदाय है। वैज्ञानिकों ने हिसाव लगाया है कि एक शरीर में यदि लम्बाई-चौड़ाई में फेफड़ों के कोशों (घटकों) को फैला दिया जाय, तो उसका विस्तार चौदह सहस्र वर्गफीट होगा। वे कोश, एक मांसपेशी (डायफ्राम) की चाल से, खुलते और बन्द होते हैं।

जब यह कोश खुलते हैं तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर श्वास के द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर उसे भर देते हैं। अब इन कोशों में, इस प्रकार से, अशुद्ध रक्त और शुद्ध वायु दोनों एकत्र हो गये हैं। प्रकृति का एक विलक्षण नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती, वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु ओषजन नहीं है और श्वास के द्वारा लिए हुए वायु में कार्बन वायु नहीं है। इन दोनों में जब उपर्युक्त नियम काम करता है तब उसका परिणाम यह होता है कि रक्त में से कार्बन वायु निकल कर श्वास के वायु में और श्वास के द्वारा आये हुए वायु में से ओषजन निकल कर रक्त में चला जाता है। फल यह होता है कि रक्त इस प्रकार शुद्ध और श्वास के द्वारा आया हुआ वायु अशुद्ध हो जाता है। शुद्ध रक्त हृदय में जाकर धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में चला जाता है और अशुद्ध वायु निश्वास द्वारा बाहर निकल आता है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

हृदय की धड़कन

हृदय की धड़कन क्या वस्तु है? एकबार हृदय से रक्त का शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जाना और फेफड़े से शुद्ध होकर रक्त का हृदय में वापिस आना, बस। इन्हीं दोनों क्रियाओं से, हृदय में धड़कन बनती है। औसतन एक मिनट में ७२ धड़कन एक प्रौढ़ पुरुष के हृदय में हुआ करती है। विशेष अवस्थाओं में आयु के अन्तर से धड़कन की मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है। आम तौर से एक सेकिण्ड से कम समय में एक बार रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में आता और शुद्ध होकर वापिस चला जाता है। एक शरीर वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार २४ घंटे में २५२ मन रक्त हृदय से फेफड़े में आता है और इतना ही रक्त शुद्ध होकर

फेफड़े से हृदय में वापिस चला जाता है। इस धड़कन से आवाज 'लूब' 'डब' के उच्चारन जैसी होती है। जब हृदय संकुचित होकर रक्त निकलता है तब 'लूब' के सदृश ध्वनि होती है और फैल कर जब रक्त ग्रहण करता है तब 'डब' शब्द की ध्वनि होती है। इन दोनों ध्वनियों में समय का कुछ अन्तर अवश्य होता है, परन्तु इतना थोड़ा कि दोनों शब्द मिले हुये से ही मालूम होते हैं और विशेषज्ञों के सिवाय साधारण लोग इस अन्तर को नहीं जान सकते। अस्तु, अब विचारणीय बात यह है कि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़ों में जावे। परन्तु श्वास के द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचे अथवा सब कोशों, में जहां रक्त पहुँच चुका हो, शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ? फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं—(१) एक ऊपरी भाग जो प्रायः गर्दन तक है। (२) मध्यभाग जो इधर-उधर हृदय के दोनों ओर है। (३) निम्न भाग जो डायफ्राक (मांसपेशी) के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता, इसीलिये फेफड़े के सब भागों अथवा सब भागों के समस्त कोशों में नहीं पहुँचता। जब फेफड़े के ऊपरी भागों में श्वास द्वारा वायु नहीं पहुँचता, तो फेफड़े का ऊपरी भाग रोगी होना शुरू होता है और उसके इस प्रकार त्रुटिपूर्ण हो जाने से एक रोग हो जाता है, जिसको "ट्यूबरक्योलोसिस" (Tuberculosis) कहते हैं और जब इसी प्रकार मध्य और निम्न भाग फेफड़ों के बेकार और त्रुटिपूर्ण होने लगते हैं तो उसके परिणाम में खांसी, दमा, निमोनिया, जीर्णज्वरादि अनेक रोग, जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं, होने लगते हैं। इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचने से जहाँ एक ओर फेफड़े से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो—

एक और भयंकर परिणाम

दूसरी ओर उसका एक परिणाम यह भी होता है कि हृदय से जो रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता है वह बिना शुद्ध हुये अशुद्ध ही हृदय में वापिस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता। वहां से यह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है। इसका फल रक्त-विकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज (खुजली खारिश) से लेकर भयंकर रोग कुष्ठ तक हो जाता है इसलिये इन सब दुष्परिणामों से बचने के लिये आवश्यक है कि फेफड़े वायु से पूरित होते रहें और कोई कण (कोष) उस में ऐसा न रहने पावे जहां वायु न पहुँच सके। यहीं से प्राणायाम की जरूरत शुरू होती है।

प्राणायाम की आवश्यकता

प्राणायाम के द्वारा मनुष्य के भीतर जब वह श्वास रोक देता है, तब श्वास लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है। उसका फल यह होता है कि श्वास भीतर लेते समय श्वास वेग के साथ तेज हवा व आंधी के सदृश होकर फेफड़े में पहुँचता है, और जिस प्रकार आंधी व तेज हवा नगर के कोने-कोने में प्रवेश करती है, इसी प्रकार वेग के साथ श्वास के द्वारा भीतर लिया हुआ वायु, फेफड़े के एक-एक कोष तक पहुँच जाता है, और उससे न तो फेफड़े ही में कोई विकार होने पाता है और न रक्त ही दूषित होने पाता है। अस्तु, देख लिया गया कि प्राणायाम शरीर की उन्नति का हेतु ही नहीं, किन्तु मुख्य हेतु है। इसलिये स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक नर-नारी के लिये आवश्यक है कि प्राणायाम किया करे। यह शारीरिकोन्नति का विवरण हुआ। इसी प्रकार इससे मानसिकोन्नति भी होती है। निदान दोनों प्रकार के कर्त्तव्य प्राणायाम से विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

तृतीय अध्याय

व्यायाम

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता ।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥१॥
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता ।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥२॥

महर्षि धन्वन्तरिजी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं। "व्यायाम से शरीर बढ़ता है। शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है, शरीर के सब अंग सुडौल होते हैं, पाचनशक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है, शरीर दृढ़ और हलका होकर स्फूर्ति आती है और तीनों दोषों की शुद्धि होती है।

श्रम (थकावट), ग्लानि (दुःख), प्यास तथा शीत (जाड़ा), उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षिजी के इस कथन पर श्री पं० भगवान्देवजी लिखते हैं कि जो भोजन हम प्रतिदिन करते हैं, उसे प्रथम हमारे पक्वाशय (उदर) में पेट की अग्नि, जिसे जठर अग्नि कहते हैं, खाये हुए भोजन को पकाती है। आमाशय (पेट) को पाकशाला के समान समझो, यदि रसोई में अग्नि भलीभाँति न जलती हो तो भोजन अच्छा या सर्वथा नहीं पक सकता। इसका फल यह होगा कि सारा परिवार भूखा रहेगा या ख़राब भोजन करके रोगी

पड़ जायेगा। जिसकी जठराग्नि वा आमाशय ठीक प्रकार कार्य नहीं करता, उसका खाया हुआ भोजन भली प्रकार से नहीं पचता और शरीर का अंग नहीं बनता, सारा शरीर रोगी वा निर्बल हो जाता है। जिसकी पाचनशक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है, उसका भोजन शीघ्र तथा अधिक मात्रा में पचता है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुँचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। तीव्र जठराग्नि भोजन के पौष्टिक सार भाग को मल भाग में नहीं जाने देती।

महर्षि धन्वंतरिजी महाराज ने "आषोडशाद्वृद्धिः" सोलह वर्ष से २ वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया पिया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बन कर शरीर का अङ्ग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बुड्ढा ही रहता है। सार यह है कि हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है, जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मल भाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मानुष शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आ जाती है, वह नस नाड़ियों के द्वारा भोजन से इसको इस प्रकार खींचती रहती है, जिस प्रकार जल को स्पञ्ज वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याहीचूस), और यही उष्णता शरीर में रस से रक्तादि धातुओं का निर्माण और सञ्चार करती है, जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का सञ्चार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में

रक्त उत्तेजित होकर नस नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ने लगता है, नस नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं, सारे शरीर में रक्तसञ्चार भलीभान्ति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत् तार विना विद्युत्धारा (Current) के सर्वथा निस्सत्व वा शक्तिहीन है, उसी प्रकार रक्तसंचारिणी सब नाड़ियां रक्तसञ्चार के विना व्यर्थ हैं और रक्तसंचार विना रक्त के बने ही कैसे ? रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से, भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम। इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनता और फिर रक्त नस नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता तथा शक्ति-संचार करता है, व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इसमें यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल मूत्रादि द्रव्यों को बाहर निकाल फेंकती और शरीर को शुद्ध पवित्र बनाती है। जिस प्रकार झाड़ू घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, इस प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल मूत्रादि रूपी कूड़े करकट को बाहर निकाल फेंकती है। और यह उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा व मूत्रेंद्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोम कूपादि (मसामों) के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर के बाहर ही निकाल कर छोड़ती है, यहां तक कि व्यथाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस विषय में प्रोफ़ेसर राममूर्ति के जीवन की एक घटना है। योरुप में इन्हें नीचा दिखाने के लिये कुछ पापियों ने भोजन

में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस पन्द्रह हज़ार दण्ड निकाल डाले, सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गये। व्यायाम करने वाले का शरीर अत्यन्त शुद्ध, निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल मूत्रादि एक रीति से निकल जाते हैं, कभी मलबन्ध (कब्ज) नहीं होता, उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी या नहीं, शौच दोनों समय खुल कर आता है, आमाशय वा जठराग्नि को बल देने वाला सबसे सस्ता और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करने वाले को मन्दाग्नि का रोग कभी नहीं होता, वह जो भी पेट में डाल लेता है, सब कुछ शीघ्र ही पच कर शरीर का अंग बन जाता है, उसका खाया पिया घी, दूध आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर को ही लगता है, टट्टी में नहीं निकलता। अतः उसकी बल शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है, उसके अंग प्रत्यङ्गों की वृद्धि यथायोग्य होती है, शरीर के अंगों को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियमपूर्वक किसी भी व्यायाम को कर ले, तो उसका शरीर भी सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धा-पूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं, उनका तो कहना ही क्या, उनके शरीर का सभी मांस पेशियां लोहे की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस नाड़ियां, सारा स्नायुमंडल और शरीर का प्रत्येक अंग वज्र वा स्पात (फ़ौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है, चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी सुडौल और गठी हुई भुजायें, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जङ्घायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्तवर्ण (लाल) मुख-मण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम

करने से शरीर का प्रत्येक अंग यथेच्छ वृद्धि को प्राप्त हो अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ और सघन बन जाता है, शरीर पर व्यर्थ का मांस वा मेद (चरबी) चढ़ कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता। महर्षि धन्वन्तरिजी महाराज लिखते हैं:—

न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात् ॥१॥
न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति।
स्थिरी भवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥२॥
वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिये व्यायाम से बढ़ कर और कोई औषधि नहीं है, व्यायामी मनुष्य से उसके शत्रु सर्वदा डरते रहते हैं और उसे दुःख नहीं देते ॥ १ ॥

व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता, व्यायामी पुरुष का शरीर और हाड़ मांस सब स्थिर होते हैं ॥ २ ॥

जो मनुष्य जवानी, सुन्दरता और वीरतादि गुणों से रहित है, उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है ॥ ३ ॥

ठीक ही है, व्यायाम करने वाले का शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय होता है। रंग रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है। बुढ़ापा उसके पास आता हुआ घबराता है। व्यायाम करने वाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है। वह गुणों की खान और उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना)

बन जाता है। आहा! यदि ऐसा युवक लंगोट बांध कर खड़ा हो जाये तो दशकों की यही इच्छा रहती है कि इस के सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीय कान्ति उनके मन को मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जब कि जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्व) वीर्य बना, वह भी व्यायाम के द्वारा पच कर रक्त में मिल जाता है और शरीर का ही अंग बन जाता है। "वीर्य वै वलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश और पतन की सम्भावना ही नहीं रहती, शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आ जाती है। इसलिये महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है, व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता, फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये। व्यायाम प्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदि किसी को कुसंस्कार-वश बुरे विचार तंग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ कर दे अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जाना चाहिये फिर देखिये कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबा कर भागते हैं, उनका पता भी न चलेगा कहां गये। काम-वासना का वेग कितना भी प्रवल क्यों न हो तुरन्त ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है, नीच से नीच मनुष्य यदि नियम-

पूर्वक व्यायाम करने लग जाये तो वह स्वयं नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है, मन की चंचलता नष्ट होकर वह वश में आ जाता है और मन सब इंद्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध पवित्र होकर वश में आ जाता है, तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर ये स्वयं शान्त और पवित्र हो जाते हैं। आत्मा को शम और दम की शक्तियां प्राप्त होती हैं। व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो जाती है। वह सर्वथा शुद्ध पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करने वाले के लिये वीर्यरक्षा व ब्रह्मचर्यपालन वाम हस्त का काम हो जाता है।

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते हंसते झूलने वाले पं० रामप्रसादजी लिखते हैं—"मैं मंदिर में आने जाने लगा, पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्यपालन का उपदेश देते थे, वह मेरे पथ-प्रदर्शक बने, मैंने एक सज्जन की देखा देखी व्यायाम करना आरम्भ कर दिया, अब तो मुझे भक्ति-मार्ग में कुछ आनन्द प्रतीत होने लगा और चार पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा, मेरी सब आदतें और कुभावनायें जाती रहीं, इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा, इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थ-प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन में एक नया पृष्ठ खोल दिया। मैंने उस में उल्लिखित कठिन ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया, मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछा कर सोता और प्रातःकाल चार बजे से ही शय्या त्याग देता, स्नान सन्ध्यादि से निवृत्त हो व्यायाम करता व्यायामादि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया और रंग निखर आया किन्तु मन

की वृत्तियां ठीक न होतीं, सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था, इसी कारण कभी कभी स्वप्नदोष हो जाता, मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया, केवल थोड़ा सा दूध ही रात को पीने लगा, फिर किसी सज्जन के कहने से मैंने नमक खाना भी छोड़ दिया, केवल उबाल कर साग या दाल से एक समय भोजन करता, मिर्च खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक नमक न खाया, नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर हो गये और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया, सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

जर्मन राष्ट्र को उठाने वाले हर हिटलर के व्यायाम के प्रति कितने सुन्दर भाव थे। "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में वे लिखते हैं, "अपनी शिक्षा-पद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर-अभ्यास को नहीं व्यायाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर-निर्माण को देना होगा।" वे आगे लिखते हैं, "क्योंकि सर्व मान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।" हर हिटलर ने अपने इन सुन्दर विचारों को थोड़े ही समय में कार्यरूप में परिणत कर अपने देश को एक बार तो उन्नति के शिखर पर चढ़ा दिया। उनके जीवन की एक घटना है। एक बार कालिजों का दीर्घावकाश "लम्बी छुट्टी" बन्द कर दिया गया और दस हजार विद्यार्थियों को, जिनमें लड़के लड़कियां दोनों थे, बुला कर कहा गया कि रायन नदी से एक लम्बी नहर तुमको तीन मास की छुट्टियों में खोदकर निकालनी है, यही आपके देश-प्रेम की परीक्षा है। विद्यार्थियों ने अपने देश के नेता की इस आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया और कई सौ मील लम्बी नहर कठोर परिश्रम करके तीन मास के स्थान में ढाई मास में ही खोद कर तैयार कर दी। इसका कारण नियमित व्यायाम तथा शारीरिक श्रम करने का

अभ्यास ही है। सभी पश्चिमी देशों में व्यायाम शिक्षा का अंग बन चुका है, वहां के सुधारक व्यायाम के महत्व को भलीभांति समझ सकते हैं। अतः पश्चिम में सर्वत्र व्यायाम का खूब प्रचार है।

यूनान का प्रसिद्ध वैद्य अफ़लातून लिखता है कि मल को जमा होने से रोकने के लिये व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है, वह विना कष्ट के मल को पचाता है और प्रवृत्ति का सहायक है।

डा० कुरेशी कहता है "कि व्यायाम त्यागने से शक्तियां क्षीण होती हैं, व्यायाम के लाभ बहुत हैं, व्यायाम मल को दूर करता है, जठराग्नि को उद्दीप्त करता है और पट्ठों को दृढ़ करता है तथा रोम-कूपों को खोलता है।

डा० निकोलस लिखता है कि "व्यायाम मांस पट्ठों को बल देता है जिससे मानवीय शरीर के अवयव अपना काम उत्तमता से कर सकते हैं, इससे दिल-नस-नाड़ियां और सम्पूर्ण रक्त बनाने वाले अंगों को पुष्टि मिलती है, इससे क्षुधा बढ़ती है और जठराग्नि तेज होती है, फेफड़ों में रक्त अधिक जोर से फेंका जाता है, जिससे छाती की नसें पेशियां अधिक बल से काम करती हैं और श्वास बढ़ जाता है, छाती फैलती है, फेफड़े बढ़ते हैं, मस्तिष्क में अधिक मात्रा में उत्तम रक्त आता है, उत्तम रक्त से पट्ठे अधिक उत्तमता से मल को बाहर निकालते हैं, जिसके निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा, वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अतः व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिये, अपितु नित्य करना चाहिये।

डाक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं, "व्यायाम से रक्त का संचार भ्रमण बढ़ता है और रक्त लाखों बालों से भी सूक्ष्म सब शरीर की नसों में पहुँच जाता है, व्यायाम से सब अंगों में बल स्फूर्ति आती है, सब अंगों में पूर्णता, लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति

और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिये सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

डा० ब्लैक लिखता है, "जवानी में उचित व्यायाम को इन बातों से छोड़ नहीं देना चाहिये, जैसा कि प्रायः कह दिया करते हैं, मुझे समय नहीं मिलता, आज ऋतु अच्छी नहीं थी, पोशाक अच्छी नहीं है, लोगों के सामने करते बुरा प्रतीत होता है, व्यायाम करने को जी नहीं चाहता था, इससे शरीर कोमल नहीं रहता। व्यायाम शरीर के लिये आवश्यक वस्तु है।"

एक और डाक्टर लिखता है, "व्यायाम से प्रायः रोग रुक जाते हैं, कई रोग दूर हो जाते हैं, बहुत रोगों का स्रोत आलस्य है।"

एक प्रसिद्ध वैद्य एक स्थान पर लिखते हैं, "ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये भी व्यायाम आवश्यक है, व्यायामी का वीर्य पुनः उसी के शरीर में खप कर दृढ़ करता है। जो मनुष्य व्यायाम नहीं करता तो उसे स्वप्नदोष होने लगता है। युवावस्था के आरम्भ में व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है। यह वह काल है, जब कि शरीर में वीर्य बनता है और कामोत्तेजना आरम्भ होती है, काम के वेग के कारण इस अवस्था में लड़के लड़कियां व्यसनों में फंस जाते हैं। यह समय वीर्य निकालने का नहीं, परन्तु वास्तव में शरीर को बढ़ाने, गांठने, दृढ़ बनाने के लिये होता है, वीर्य सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं होता, इसे शरीर में ही खपाना चाहिये। यदि बुरे विचार न हों और व्यायाम किया जाये तो वीर्य शरीर में लय होकर शरीर को दृढ़ बनाता है। यही सब वैद्य-डाक्टरों का मत है।

डा० डालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं, "वीर्य वह अमूल्य रत्न है, जो बल का भण्डार है। यह रक्त में पुनः मिल जाता है और शरीर में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है, दाढ़ी, बाल, अस्थि और सब दैनिक व्यवहारों को बल देता है, नपुंसकों में यह परिवर्तन इसलिये नहीं होते कि उन में वीर्य नहीं होता। व्यायामी

अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है ।

व्यायाम सम्बन्धी नियम:—(१) जिनको कुछ भी चिकना और ताक़तवर भोजन मिलता हो, उनको ही व्यायाम करना हितकारी है । सूखी रोटी खाने वालों के लिये व्यायाम हितकारी नहीं है ।

(२) व्यायाम करते करते कुछ खाना या चवाना उचित नहीं है । व्यायाम करके "दूध मिश्री" या "घी-दूध-मिश्री" मिला कर पीना अथवा अपनी प्रकृति के अनुसार कोई अन्य तर पदार्थ खाना आवश्यक है ।

(३) जब कि मुँह सूखने लगे, मुख से जल्दी जल्दी हवा निकलने लगे, अर्थात् दम फूलने लगे या शरीर के जोड़ों और कोख में पसीना आने लगे, तब व्यायाम करना बन्द कर दें। यही बलार्द्ध के लक्षण हैं ।

(४) व्यायाम करते समय, लंगोट, रूमाली या जांघिया वग़ैरह अवश्य बांध लें, जिससे फोते ढीले न हों, क्योंकि लंगोट वग़ैरह न बांधने से फोते लटक आने और नामर्द हो जाने का भय है ।

(५) व्यायाम करके कुछ देर टहलना अच्छा है । किसी काम में लग जाना और तत्काल ही स्नान कर लेना अच्छा नहीं है ।

(६) बुद्धिमानों को चाहिये कि अपनी अवस्था, अपना बलाबल, देश, काल और भोजन आदि को विचार कर व्यायाम करें, अन्यथा रोग होने का डर है ।

(७) जब व्यायाम से शरीर थक जावे, तब पैरों में तेल की मालिश करना या उबटन लगवाना लाभदायक है ।

(८) जिन लोगों को व्यायाम करना डाक्टर के द्वारा निषेध हो वे कदापि व्यायाम न करें अन्यथा लाभ के बदले भयङ्कर हानि होने की सम्भावना है ।

चतुर्थ अध्याय

आहार

मनुष्य के आहार पर ही उसका स्वास्थ्य अवलम्बित है। यदि आहार उत्तम है और पर्याप्त पोषक तत्वों से युक्त है तो मनुष्य नीरोग रहता हुआ दीर्घायु प्राप्त करता है, अन्यथा रोगी रहता हुआ अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाता है। उत्तम आहार द्रव्य होते हुए भी यदि नियमपूर्वक उनका सेवन न किया जाये तो भी भयानक दुष्परिणाम निकलते हैं।

यदि अजीर्ण रहने लग जावे, तो आहार के पश्चात् बनने वाली रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र आदि सातों धातुयें उत्तरोत्तर पूरे परिमाण में नहीं बनने पातीं, जिससे कि शरीर पूर्ण स्वस्थ रह सके, अपितु अजीर्ण के प्रभाव से सिरदर्द, सिर में चक्कर आना, किसी काम करने को मन न करना, खाने में अरुचि हो जाना, गन्दे गन्दे डकार आते रहना, कमर में दर्द होना, चलते समय, सीढ़ी चढ़ते समय अथवा थोड़ा सा भी काम करते समय दिल धड़कने लग जाना आदि आदि लक्षण शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति आजकल ऊपर लिखे हुए रोगों में अथवा रोगों के लक्षणों में फँसा हुआ है, किन्तु ज्यों ज्यों वह दवाइयों का प्रयोग करता है, रोग घटने की अपेक्षा बढ़ता ही चला जाता है। यदि हम शरीर के लिये आवश्यक पदार्थों का सेवन और उनके खाने के नियमों का पालन करें, तो बहुत ही थोड़े समय में हमारे अधिकांश रोग दूर हो सकते हैं और हमारा स्वास्थ्य भी उन्नत हो सकता है। मैंने स्वस्थ और सुखी रहने के लिये एक श्लोक बनाकर अपने कमरे में टांग रक्खा है, जो इस प्रकार है:—

हिताशी च मिताशी च, संविनोदी च संयमी।
स्वाध्यायी श्रमशालश्च, सर्वथा हि स्वस्थः सुखी॥

अर्थात् सुखी रहने के सात साधन हैं—

(१) हितकारी पदार्थों का खाना, (२) कम खाना, (३) प्रसन्न-चित्त रहना, (४) संयम से रहना (५) सदा अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय करना, (६) परिश्रमशील होना, जिस में व्यायाम भी शामिल है, (७) स्वस्थ रहना।

इनमें प्रथम के छः साधन स्वस्थ रहने के लिये हैं और सातों मिलकर सुखी रहने के साधन हैं। नवयुवकों को यह श्लोक सदा स्मरण रखना चाहिये।

भोजन सम्बन्धी नियम

"स्वास्थ्य रक्षा" नामक पुस्तक में जो भोजन-सम्बन्धी नियम दिये हैं, उनका यहां उल्लेख किया जाता है:—

१—जिस तरह लौकिक आग बिना ईंधन के बुझ जाती है, उसी तरह भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्दी पड़ जाती है। शरीर की अग्नि खाये हुए आहार को पचाती है, किन्तु जब आहार नहीं पहुँचता, तब वात आदि दोषों को पचाती है, दोषों के क्षय होने पर धातुओं को पचाती है और धातुओं के क्षय होने पर प्राणों को पचाती है। प्रत्यक्ष में ही देखते हैं कि भूख के समय न खाने से शरीर टूटने लगता है, अरुचि उत्पन्न होती है, ऊंघ आने लगती है, आँखें कमज़ोर हो जाती हैं और शरीर की शक्ति का नाश हो जाता है, इस वास्ते भूख लगने पर हज़ार काम छोड़ कर भोजन कर लेना चाहिये।

(२) नियत समय पर भोजन करना बहुत ही ज़रूरी है। बँधे हुए समय पर खाने से जठराग्नि पहले के खाये हुए अन्न को आसानी

से पचा लेती है और काफ़ी समय मिलने से दूसरा भोजन पचाने को तैयार हो जाती है।

(३) जो मनुष्य भोजन का समय होने से पहले ही भोजन कर लेते हैं, उनका शरीर असमर्थ हो जाता है। असमर्थ होने से सिर में दर्द, अजीर्ण, विशूचिका, विलम्बिका आदि भयङ्कर रोग हो जाते हैं। इन प्राणघातक रोगों के पञ्जों में फंस कर विरले ही भाग्यवान् बचते हैं, इस वास्ते भोजन के मुक़र्रर समय पर विशेषकर खूब भूख लगने पर भोजन करना उचित है।

(४) जो मनुष्य भोजन के समय से बहुत पीछे भोजन करते हैं, उनकी आहार पचाने वाली अग्नि को वायु नाश कर देता है। समय से पछे जो अन्न खाया जाता है, वह अग्नि के नष्ट हो जाने के कारण बड़ी कठिनाई से पचता है और फिर दूसरी बार भोजन करने की इच्छा नहीं होती। इस वास्ते भूख लगने पर भोजन के समय को टालना बुद्धिमानी नहीं है।

(५) जब शरीर में उत्साह हो, अधो वायु ठीक खुलती हो, बदन हलका हो, शुद्ध डकारें आती हों, भूख और प्यास लगे, तब जानना चाहिये कि भोजन पच गया है और यदि दूसरे भोजन का समय हो गया हो, तो अवश्य भोजन करना चाहिये।

(६) पेट के चार भाग कीजिये, उनमें से दो भाग अन्न से भरिये, तीसरा भाग पानी से और चौथा भाग हवा के चलने फिरने को खाली रहने दीजिये। मतलब यह कि कुछ कम खाना अच्छा है, किन्तु अधिक खाना अच्छा नहीं है। एक अंग्रेज़ी पुस्तक में लिखा है कि बहुत ज्यादा खाने से अधिक मनुष्य मरते हैं, उनकी अपेक्षा बहुत कम खाने से कम मनुष्य मरते हैं।

(७) बहुत ही कम भोजन करने से बल का नाश होता है; शीतल और सूखा हुआ अन्न कठिनता से पचता है. जल आदि

से भीजा हुआ अन्न ग्लानि करता है। सड़ा हुआ और बहुत दिनों से रक्खा हुआ भोजन भी हानिकारक होता है। इस वास्ते ऐसे भोजनों से बचना चाहिये।

(८) खाना न तो बिलकुल कम ही खाओ और न अति अधिक ही खाओ, क्योंकि मात्रा से कम खाने से शरीर कमज़ोर हो जाता है और ताकत घट जाती है; मात्रा से अधिक खाने से आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ाहट आदि उपद्रव हो जाते हैं।

(९) जो पदार्थ एक बार खाकर, दूसरी बार मांगा जाय या जो पदार्थ खाने वाले को अच्छा लगे उसे ही "स्वादिष्ट" कहते हैं। स्वादिष्ट पदार्थ खाने से चित्त प्रसन्न होता है एवं बल, उत्साह और उम्र की बढ़ती होती है, इसके विपरीत स्वादुरहित भोजन करने से चित्त अप्रसन्न होता है और बल, पुष्टि, उत्साह तथा उम्र की घटती होती है। इस वास्ते जिस चीज़ से दिल नाराज़ हो वह कदापि न खाना चाहिये।

(१०) बुद्धिमान् को खूब भूख लगने पर, अपने शरीर, अपनी प्रकृति और देश काल आदि के अनुकूल भोजन करना चाहिये। जो पदार्थ शीघ्र पचने वाले, पवित्र, स्वादिष्ट और हितकारी हों वही खाने चाहियें। सूखे, बासी, सड़े हुए, अधपके, जले हुए, जूठे और बेस्वाद पदार्थ न खाने चाहियें।

(११) चौला आदि सूखे अन्न, दूध, मछली अथवा दूध-मूली आदि विरुद्ध पदार्थ, चना मसूर आदि विष्टम्भी अन्न खाने से "अग्नि" मन्द हो जाती है, अतः अहितकारी विरुद्ध पदार्थों से सदा बचना चाहिये।

(१२) बहुत जल्दी जल्दी खाने से भोजन के गुण-दोष मालूम नहीं होते और भोजन देर में पचता है, क्योंकि दांतों का काम बेचारी आंतों को करना पड़ता है, इसलिये भोजन को खूब रौंथ कर खाना

चाहिये। अच्छी तरह चबा कर खाया हुआ अन्न सहज में पच जाता है और अधिक पुष्टि करता है।

(१३) वैद्यक शास्त्र में सबेरे-शाम, दो समय भोजन करने की आज्ञा है। सबेरे का भोजन १० बजे के करीब और शाम का भोजन ८ बजे रात के भीतर ही कर लेना चाहिये। शाम के भोजन में कदापि देर न किया करो, क्योंकि रात को देर करके खाने से आहार अच्छी तरह नहीं पचता और अजीर्ण हो जाता है, लेकिन आयुर्वैदिक ग्रन्थों में ऐसा भी लिखा है कि रस, दोष और मल के पच जाने पर जब भूख लगे, तब ही भोजन का समय है।

एक अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है:—"यदि सवेरे ही, काम पर जाने से पहले, कुछ जल-पान के तौर पर खा लियां जाय तो बहुत ही उत्तम हो। इससे शरीर पुष्ट होता है और ज्वर आने का खटका नहीं रहता। ताजा भोजन दोपहर के करीब करना चाहिये और संध्या काल की ब्याल्लू आठ बजे के पहले कर लेनी उचित है। रात को देर करके न खाना चाहिये।" जिनकी अग्नि तेज़ हो अर्थात् जिन्हें सवेरे ही भूख लगती हो और जिनको शारीरिक या मानसिक परिश्रम करना पड़ता हो, यदि वह लोग मुख्य भोजनों के बीच में, दिल दिमाग में तरी व ताक़त लाने वाला थोड़ा भोजन कर लें तो बुरा नहीं है।

(१४) प्यास लगने पर जल न पीने से कण्ठ और मुख सूख जाता है, कान बन्द हो जाते हैं और हृदय में पीड़ा होती है, अतः प्यास लगने पर "जल" अवश्य पीना चाहिये।

(१५) प्यास में भोजन करना और भूख में पानी पीना उचित नहीं है। प्यास में विना जल पिये भोजन करने से "गुल्म" रोग हो जाता है। इसी तरह भूख में विना भोजन किये जल पीने से "जलोदर" रोग हो जाता है।

(१६) भोजन करने से पहले "जल" पीने से अग्नि मन्द और शरीर निर्बल हो जाता है, भोजन के अन्त में पानी पीने से कफ बढ़ता है, किंतु भोजन के बीच में थोड़ा थोड़ा पानी पीने से अग्नि दीप्त होती है और शरीर समान रहता है अर्थात् बहुत मोटा और दुबला नहीं होता।

(१७) अधिक जल पीने से अन्न अच्छी तरह नहीं पचता और जल न पीने से भी भोजन नहीं पचता, इसलिये ऐसा भी न करे कि भोजन करके लोटा भर जल भुका जाय और ऐसा भी न करे कि जल पीवे ही नहीं। अग्नि बढ़ाने के लिये बारम्बार थोड़ा थोड़ा जल पीना हितकारी है।

(१८) मनुष्य को भोजन ऐसी जगह करना चाहिये, जहां बहुत आदमियों का जमघट न हो, शास्त्रों में भोजन और शयन आदि एकान्त में ही करने अच्छे लिखे हैं।

(१९) भोजन हमेशा एकाग्रचित्त होकर किया करो। भोजन के समय सब तरफ़ का ध्यान छोड़ दो, जब तक भोजन न पच जाय, तब तक चिन्ता, फ़िक्र, ईर्ष्या, द्वेष और कलह आदि से बिलकुल बचो, क्योंकि भोजन के समय चिंता फ़िक्र आदि करने से भोजन अच्छी तरह नहीं पचता, भोजन न पचने से अजीर्ण आदि रोग हो जाते हैं।

(२०) हमेशा एक ही तरह की चीजें न खानी चाहियें, अदल-बदल कर भोजन करना चाहिये, जब कभी हो सके, नाना प्रकार के भोजन करने चाहियें।

(२१) हमेशा एक ही प्रकार का रस खाना भी उचित नहीं है। बहुत मीठा खाने से ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, प्रमेह और मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं। बहुत "खट्टा" रस खाने से खुजली, पीलिया, सूजन और कुष्ट आदि रोग हो जाते हैं।

"नमकीन" रस अधिक खाने से नेत्रपाक और रक्तपित्त आदि रोग हो जाते हैं। अधिक "चर्परी चीजें" खाने से मुख, तालू, कण्ठ और होंठ सूखते हैं, मूर्छा और प्यास उत्पन्न होती है, एवं बल तथा कान्ति का नाश होता है, इसी तरह "कड़वे" और "कसैले" रस अधिक खाने से भी अनेक रोग हो जाते हैं। इस वास्ते किसी एक रस को अधिकता से न खाना चाहिये।

(२२) भोजन से पहले सैंधा नमक और अदरक खाने से अग्नि-दीपन और भोजन पर रुचि होती है तथा जीभ और कण्ठ की शुद्धि होती है।

(२३) फल आदि अच्छी भाँति पका हो, तो भोजन के साथ खाना अच्छा है, किंतु यदि कच्चा हो या बहुत पक गया हो तो हानिकारक है।

(२४) दाल, साग आदि में मसाले खाना अच्छा है, परन्तु बहुत ज्यादा मसाले खाना पेट को नुक़सान पहुँचाता है।

(२५) भोजन करते समय पहले मीठे पदार्थ खाओ, बीच में खट्टे और खारी पदार्थ खाओ, अन्त में चरपरे, कड़वे या कसैले पदार्थ खाओ।

(२६) भोजन में बहुधा खारी, खट्टे, चरपरे, गर्म और दाहकारक पदार्थ खाने से पित्त की वृद्धि होती है। इस वास्ते पित्त की वृद्धि रोकने के लिये भोजन के अन्त में 'दूध' अवश्य पीना चाहिये।

(२७) भोजन में फल हों तो पहले अनार खाओ, किन्तु केला और ककड़ी न खाओ। अगर भोजन में रोटी, भात, तरकारी और दूध आदि हों, तो सबसे पहले रोटी और साग खाओ। इनके पीछे नर्म दाल भात खाओ, अन्त में दूध या छाछ आदि पतले पदार्थ खाओ, क्योंकि शास्त्र में पहले कड़े (सख़्त) पदार्थ; बीच में नर्म पदार्थ और अन्त में पतले पदार्थ खाना लिखा है।

(२८) मूँग आदि हलके होते हैं, किन्तु मात्रा से अधिक खाने से भारी हो जाते हैं। उड़द आदि स्वभाव से ही भारी होते हैं और पिसे हुए अन्न पिट्ठी आदि संस्कार से भारी होते हैं। जिसको मन्दाग्नि हो यानी जिसे भूख कम लगती हो, वह मनुष्य मात्रा से भारी, स्वभाव से भारी और संस्कार से भारी पदार्थ न खावे।

(२९) मनुष्य को चाहिये कि रूखा अन्न न खावे, क्योंकि रूखा सूखा अन्न अच्छी तरह नहीं पचता। हां, दूध आदि पतले पदार्थ उसके साथ उपयोग किये जायें तो अच्छी तरह पच सकता है। यदि दोपहर के भोजन के बाद सैंधा-नोन और जीरा आदि मिला कर मट्ठा पिया जाय और शाम को दूध पिया जाय तो भोजन अच्छी तरह पच जायेगा और किसी तरह का रोग न होगा।

(३०) भोजन के समय दांतों में अन्न लगा रहता है—उसे सोने चांदी की दांत-कुरेदनी या तिनके से निकाल कर खूब कुल्ले कर डाला करो। दांतों में अन्न रह जाने से मुख में से बदबू आया करती है और कीड़े भी पड़ जाते हैं, किन्तु धीरे २ निकालने से जो अन्न न निकले, उसे दांत समझ कर छोड़ दो। उसके लिये ज्यादा कोशिश न करो।

(३१) भोजन करके जल्दी २ चलना या दौड़ना उचित नहीं है। भोजन करके जो दौड़ता है उसके पीछे मौत दौड़ती है।

(३२) जब तक भोजन न पच जाये, तब तक क्रोध, चिन्ता, भय, लोभ और ईर्ष्या आदि को बुद्धिमान् अपने पास न आने दें, क्योंकि इन मानसिक विकारों से भी भोजन नहीं पचता और अजीर्ण हो जाता है। इसी तरह अनेक ग्रंथों में भोजन के समय और भोजन के पीछे प्रसन्नचित्त रहना बहुत ही जरूरी लिखा है।

(३३) भोजन के पीछे चित्त को अप्रसन्न करने वाली, भ्रम और चिन्ता करने वाली बातें मत सुनो। बदबूदार और मन बिगाड़ने

वाली चीजों को न तो देखो न छूओ। दुर्गन्धित चीजों को मत सूंघो और अत्यन्त हँसो भी नहीं। भोजन के बाद बुरी चीजें देखने, सूँघने और जोर से हँसने से वमन हो जाता है।

(३४) अति जल पीने, एक आसन पर बैठे रहने, दिशा-पेशाब और अधोवायु आदि के बेगों के रोकने से और रात को जागने से, समय पर किया हुआ, सानुकूल और हलका भोजन भी नहीं पचता।

(३५) भोजन करते ही गर्मी के मौसम के सिवा और मौसम में नींद लेकर सोने से कफ कुपित होकर "अग्नि" को नाश करता है, इस वास्ते भोजन करके सोओ मत, लेकिन लेट जाओ।

(३६) भोजन करके परिश्रम करना और नींद भर कर सोना दोनों बातें अच्छी नहीं। भोजन के पीछे धीरे धीरे १०० क़दम टहलो। भोजन के पीछे टहलने से खाया हुआ अन्न भलीभांति पच जाता है तथा गर्दन, घुटने और कमर को सुख पहुँचता है।

(३७) "सुश्रुत" में लिखा है कि मनुष्य सौ कदम टहल कर बांई करवट लेट जावे। "भावप्रकाश" में लिखा है कि पहले सीधा लेट कर आठ सांस ले, फिर दाहिनी तरफ करवट लेकर १६ सांस ले और पीछे बाईं करवट लेकर ३२ सांस ले। भोजन के पीछे ८।१६।३२। सांस लेकर, फिर जो इच्छा हो सो करे। प्राणियों की नाभि के ऊपर बाईं तरफ़ अग्नि का स्थान है, इस कारण भोजन पचाने के लिये बाईं करवट ही सोना चाहिये।

(३८) भोजन करके बैठ जाने से आलस्य और तन्द्रा (ऊँघ) आती है, लेट जाने से शरीर पुष्ट होता है, दौड़ने से मृत्यु पीछे दौड़ती है और धीरे धीरे चलने से उम्र बढ़ती है।

(३९) भोजन के पीछे अच्छी अच्छी बातें या मनोहर गाना-बजाना सुनने, रूपवान् स्त्री-पुरुषों के चित्र देखने या उनको साक्षात्

देखने, रस सेवन करने और इत्र फूल वगैरह सुगन्धित पदार्थों के सूँघने और छूने से खाया हुआ अन्न भलीभाँति पच जाता है।

(४०) भोजन करके स्त्री-प्रसंग करना, आग तापना, धूप में फिरना, घोड़े वग़ैरह की सवारी करना, रास्ता चलना, युद्ध करना, गाना, अधिक बोलना, बहुत हँसना, बहुत सोना, बैठना, कसरत करना और पानी आदि पतली चीज़ें अधिक पीना ये सब काम तन्दुरुस्ती चाहने वालों को, कम-से-कम एक घण्टे के लिये, छोड़ देना चाहिये।

(४१) जो मनुष्य किसी तरह की मिहनत करके या रास्ता चल कर शीघ्र ही खाने लगता है या जल पी लेता है उसे बुखार या वमन रोग हो जाता है।

(४२) जो मनुष्य भोजन करके, तत्काल ही, किसी तरह की कसरत या मैथुन करता है उसके शरीर में निस्संदेह रोग हो जाते हैं।

(४३) मनुष्य को चाहिये कि न बहुत गर्म पदार्थ खावे और न अधिक शीतल ही खावे; क्योंकि ठण्डा भोजन बादी और कफ करता है तथा गर्म भोजन दस्त लाता है।

(४४) जो मनुष्य कसरत या परिश्रम से थका हुआ हो, वह तत्काल ही बिना थकाई कम हुए भोजन न करे; अन्यथा अनेक प्रकार के रोग उठ खड़े होंगे।

(४५) चतुर मनुष्य को चाहिये कि, विषमासन बैठकर भोजन न करे और खाते-खाते उठ बैठना और फिर खाने पर आ बैठना, ऐसे वाहियात ढंग से भी खाना न खावे।

(४६) भोजन करके, बिना लेटे हुए बैठ जाने से मनुष्य थल-थल (मोटा) हो जाता है। थोड़ी देर सीधा लेटने से ताक़त आती है, बाईं करवट लेने से उम्र बढ़ती है और दौड़ने से पीछे पीछे

मौत दौड़ती है—यह हारीत ऋषि का वचन है ।

(४७) भोजन करके कमसे कम एक घण्टे तक कसरत, मैथुन, जल वगैरह पतली चीजें पीना, कुश्ती लड़ना, युद्ध करना, गाना, पढ़ना, पढ़ाना आदि मिहनत के काम भूल कर भी न करने चाहियें।

(४८) जिन मौसमों में दही खाना मना कर आये हैं, उनमें दही कभी न खाना चाहिये, क्योंकि वह दोष उत्पन्न करता है। रात में दही कभी न खाना चाहिये, यदि खाना ही हो, तो नमक और जल मिलाकर खा सकते हो ।

(४९) हारीत मुनि लिखते हैं कि हिचकी, श्वास, बवासीर, तिल्ली, अतिसार और भगन्दर रोग वालों को नमक मिला कर दही खाना अच्छा है, किन्तु ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कोढ़, पीलिया, कामला, सूजन, राजरोग, मृगी और पीनस रोग वालों को भोजन में 'दही' खाना अच्छा नहीं है ।

(५०) जीर्णज्वर, अतिसार, आत्म-ज्वर, विषम ज्वर और मन्दाग्नि वालों को गाय के दूध के झाग खाना अच्छा है । संग्रहणी वाले को पके हुए आम और गाय की छाछ उत्तम है।

(५१) दूध पीकर, थोड़ी देर तक, नागर पान न चबाना चाहिये, क्योंकि दूध के अन्त में पान खाना अच्छा नहीं है, किन्तु और भोजनों के अन्त में पान खाना अच्छा है। भोजन के अन्त में दूध पीना लाभदायक है।

भोजन में विटामिनः—हम जो कुछ भी खाते हैं उसका प्रभाव हमरे शरीर पर किसी न किसी प्रकार होता ही है। हमारे आहार की एक वस्तु हमारे खून को बनाती है तो दूसरी से हमारा मांस बनता है। कोई हमारी दृष्टि को तेज करती है, कोई हमारे मस्तिष्क को। हमारे आहार की जरूरी वस्तुओं में कई पदार्थ ऐसे मालूम किये गये हैं जिनका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता

है। यदि उन पदार्थों में किसी प्रकार की कमी हो जाय तो हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इन पदार्थों को विटामिन कहा जाता है।

विटामिनों के मालूम होने का इतिहास भी जानना जरूरी है। बहुत समय की बात है कि एक जहाज के मल्लाहों को ताजा फल और सब्जी न मिलने के कारण मसूड़ों में दर्द होने लगा। केवल एक मल्लाह इस बीमारी से बचा रहा, बाकी हर एक मल्लाह के मसूड़ों में पीव पड़ गई। जब वे मल्लाह अपने देश में पहुँचे तो डाक्टरों से सलाह ली। डाक्टरों ने एक नतीजा निकाला कि क्योंकि वह एक व्यक्ति, जो इस रोग का शिकार नहीं हुआ प्रतिदिन निम्बू चूसा करता था, इसलिये इसका इलाज इसी का रस चूसना है।

इसके बाद डाक्टर लोगों ने यह खोज की कि निम्बू के रस में एक पदार्थ ऐसा पाया जाता है जो दांतों को दृढ़ और स्वस्थ रखता है। इस पदार्थ का नाम विटामिन सी (c) रक्खा गया। इसके बाद पहले महायुद्ध में लोगों को अच्छी प्रकार विटामिनों का पता चला।

प्रसिद्ध विटामिन चार हैं। विटामिन ए (A), विटामिन बी (B), विटामिन सी (C) और विटामिन डी (D)।

विटामिन ए:—यह ज्यादातर दूध, मक्खन, मलाई और पनीर में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त गाजर, हरी मटर, [illegible]र मिर्च, शकरकन्दी, टमाटर, सेब, आड़ू, केला और अंजीर में भी पाया जाता है। यदि हमारे भोजन में इनकी कमी हो जाय तो हमारे फेफड़े कमजोर हो जाते हैं और खांसी की बीमारी लग जाती है। आंखें चमक खो कर खुश्क हो जाती हैं। अगर इनकी कमी को दूर न किया जाये तो आंखों पर एक सफेद झिल्ली सी आ जाती

है जो फिर कभी दूर नहीं होती। शरीर इतना दुबला हो जाता है कि आसानी से रोग घेर लेते हैं। इसकी कमी से सीने के ग्लैंड कमजोर हो कर पसीने की कमी और त्वचा के खुश्क होने के कारण होते हैं।

विटामिन बी:—यह ज्यादातर बादाम, अखरोट, सोयाबीन, हरी मटर, गोभी, प्याज, गेहूँ, चावल (हाथ के कूटे हुये), आडू और केले इत्यादि में पाये जाते हैं।

इसकी कमी के कारण आदमी में चिड़चिड़ापन, उदासी, डर और वहम पैदा होते हैं। लिखने पढ़ने के काम में उसका जी नहीं लगता, उसकी स्मरणशक्ति का लोप हो जाता है और उसके हर काम में भद्दापन टपकता है।

यदि इस विटामिन की कमी को दूर न किया जाय तो व्यक्ति के सिर और कमर में दर्द होता है, नींद कम हो जाती है और भूख में कमी होने लगती है। पट्ठों में भी कई बार कमजोरी आकर चलने की चाल बेढंगी हो जाती है। खाना खाने के बाद पेट में हल्का सा दर्द होना भी आरम्भ हो जाता है।

विटामिन सी:—यह दूध, कच्चे नारियल, नारंगी, मोसमी, निम्बू, टमाटर, मालटा, अनानास, नाशपाती, रसभरी, सोयाबीन, बन्द गोभी, फूल गोभी, हरीमिर्चे, मूली, शलजम, सेब, आडू, केले, अंगूर, छाछ इत्यादि में पाया जाता है।

इस विटामिन की थोड़ी सी कमी से ही मसूड़े सूज जाते हैं और उनमें से खून आना आरम्भ हो जाता है और मनुष्य चिड़चिड़ा हो जाता है। लहू की कमी, घाव का जल्दी अच्छा न होना, पांव और टांगें सूज जाना और दुखना भी इसकी कमी के प्रमाण हैं।

विटामिन डी:—यह दूध, मक्खन, मलाई, पनीर आदि

में पाया जाता है ।

इसकी कमी बच्चों की शरीर-पुष्टि को रोकती है और उनको दांत निकलने में तकलीफ होती है । इसकी ज्यादा कमी से बच्चों के हाथ पांव की हड्डियां टेढ़ी हो जाती हैं, माथे की हड्डी उभर आती है और उनके सिर में पसीना आकर वे अपने सिर को एक ओर से दूसरी ओर पटकते हैं। बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है और पट्टों तथा हड्डियों की कमजोरी के कारण देर में उठने बैठने लगता है । नवयुवकों और वृद्धों में इसकी कमी से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और उन्हें चलने फिरने में कष्ट होता है ।

इसके अतिरिक्त ए विटामिन से देह की पुष्टि तथा वृद्धि होती है । इसका अभाव होने से मानव को सहज ही में अनेक प्रकार के संक्रामक (Infectious) रोग पकड़ सकता है । स्वाभाविक नियम से शरीर की वृद्धि नहीं होती एवं उसमें बाधा उत्पन्न होती है । शारीरिक तेज, लावण्य तथा स्फूर्ति कम हो जाती है। वह रात में नहीं देखता है या कम देखने लगता है । अनेक प्रकार की आंख की बीमारियां होती हैं । जीवनरक्षा तथा जीवनीशक्ति की वृद्धि के लिये विटामिन ए की विशेष आवश्यकता है ।

विटामिन बी शरीर का परिपोषण तथा जीवनीशक्ति को अक्षुण्ण (स्थिर) रखने की सहायता के लिये यह विटामिन पहिले विटामिन के साथ अवश्य रहना चाहिये । बी जात के विटामिन ए जात के विटामिन को दैहिक परिपोषण कार्य में सहायता करते हैं । इसका अभाव वा कम होने पर बेरीबेरी, स्नायुप्रदाह, स्नायुदौर्बल्य, क्षुधामान्द्य (कम), कोष्ठ-काठिन्य एवं अनेक प्रकार की पेट की बीमारियां उत्पन्न होती हैं । इसके अतिरिक्त हाथ पैर में सूजन, आमवात, आलसीपन, अमनोयोगिता आदि रोग भी होता है । यह इस विटामिन का विशेषत्व है, कि जो मानव कार्बोहाईड्रेट

(Carbohydrate) वस्तु कम खाता है, उसके लिये इसका प्रयोजन भी कम है, परन्तु जो मानव जितनी कार्वोहाईड्रेट (श्वेतसार) वस्तु खायगा, उसके लिये यह प्रजीवक तत्त्व (Vitamin) उतना ही अधिक परिमाण में चाहिये। जो जन केवल भात खाकर ही जीवन-यात्रा-निर्वाह करता है, उस जन के लिये यह प्रजीवक तत्व अधिक मात्रा में चाहिए। शायद इसके अभाव से ही अनेक प्रकार की पेट की बीमारियाँ होतीं हैं।

विटामिन बी का अभाव होने से अनेक प्रकार के चर्म-रोग हो जाते हैं जैसे दद्रु; खुजली, फोड़े फुन्सी आदि। प्रजीवक तत्त्व बी चावल, दाल, यव, गेहूं. मक्का प्रभृति अनाज की भूमि में रहता है। चना, मूंग, मटर, उड़द आदि दाल जल में भिगोने के बाद, उसमें जो अंकुर निकलता है, उसमें ये प्रजीवक-तत्त्व अधिक परिमाण में विद्यमान रहता है। पका हुआ भात का जल, दूध, पालक की पत्ती, शलगम, करमकल्ला, नारियल, मूंगफली, अखरोट, जीव का यकृत आदि में तथा कच्चे घास में यह विटामिन विद्यमान है। जो जन केवल भात खाता है उसे ये सब चीजें ज्यादा खानी चाहिएं।

विटामिन सी के अभाव से रक्त का घनत्व कम हो जाता है एवं रक्तपात प्रवणता बढ़ जाता है। चमड़ा स्थान स्थान पर चिर जाता है। एवं रक्त गिरता है या चमड़े के ऊपर काला काला दाग पड़ जाता है। स्कार्वि नामक रोग उत्पन्न होता है। दांत की जड़ ढीली पड़ जाती है तथा दर्द होता है। ताजा शाक भाजी, तरकारी, ताजा फलमूल में यह प्रजीवक तत्त्व प्रचुर परिमाण में रहता है, परन्तु वे सब चीजें सूख जाने से या उन्हें आग में पकाने से यह प्रजीवक तत्त्व नष्ट हो जाता है। यह प्रजीवक तत्त्व बिलकुल भी ताप सहन नहीं कर सकता। अति साधारण ताप से भी यह नष्ट हो जाता है जो सब शाक भाजी, हरी तरकारी हम पका कर खाते हैं

उसमें प्रजीवक तत्त्व, जैसा का तैसा रहने पर भी, यह विटामिन सी खराब हो जाता है। यदि इस प्रजीवक तत्त्व का लाभ उठाना हो तो फल-मूल, हरी-तरकारी कच्ची ही खानी चाहिए। कच्चा प्याज, मूली, टमाटर, सेलाद आदि कच्चा ही खाना चाहिए। टमाटर का रस पीना उत्तम है, अनेक प्रकार के ताजे कच्चे घास का रस दवाके रूप में एक औंस परिमाण में पीने से ए, बी, सी तीनों प्रकार के प्रजीवक तत्त्व हमारे शरीर में पहुँच जाते हैं। अनेक प्रकार के कच्चे घास का रस रक्त का शोधक तथा अनेक प्रकार के रोगों का निवारक है।

शिशु-जीवन की रक्षा के लिए यह प्रजीवक तत्त्व की विशेष आवश्यक है। केवल शिशुजीवन ही नहीं, प्रायः प्रत्येक मानव के लिए उस जात की खाद्य-प्राण की सदा ही आवश्यक है। यदि स्वास्थ्य के साथ जीवित रहने की इच्छा है तो अति बाल्यावस्था से मृत्यु तक सभी अवस्था में इस जात का जीव तत्त्व थोड़ा बहुत नित्य ही आवश्यक है। केले में यह अधिक परिमाण में विद्यमान है।

विटामिन डी भोज्य पदार्थों में इस प्रजीवक तत्त्व का अभाव अथवा कम होने से अनेक प्रकार के अस्थिरोग, राजयक्ष्मा, जीर्ण-शीर्णता यानी रिकेट रोग आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। इसका अभाव होने से शरीर हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ठ नहीं हो सकता। शरीर में चूने का भाग कम होने से यह जीवनतत्त्व शरीर के भीतर पुनः केलशियम प्रवेश करने की सहायता करती है। सीधी बात में यह शरीर में केलशियम बना कर उसका अभाव पूर्ण करता है। मरुमध्यस्थ स्नायुसमूह पानी रीढ़ की हड्डी के भीतर के स्नायु तथा मज्जा, मस्तिष्क, अस्थि, अस्थिमज्जा, स्नायु समूह, शुक्र, उजः आदि शरीरस्थ श्रेष्ठ उपकरण की परिपुष्टि के लिए इसकी आवश्यकता खूब अधिक है। इसके सिवाय उपर्युक्त महान् तत्त्व-समूह उत्पन्न ही नहीं हो सकता, न उसकी परिपुष्टि ही होती है। परीक्षा

से यह भी प्रमाणित हो गया है कि प्रजीवक तत्त्व डी के सिवाय दूसरे किसी भी उपाय से क्षय-पूरन होकर शरीर परिपुष्ट नहीं हो सकता। इस कारण से हम चिकित्सक-वृन्द क्षय (T.B.) बीमार मात्रा को ही विटामिन ए तथा डी की व्यवस्था अधिक करते हैं जिससे सर्व प्रकार के विटामिन मौजूद रहते हैं।

शिशु तथा अल्पवयस्क बालक-बालिका के अस्थि-गठन, अस्थि का बल-संरक्षण एवं जीवनी शक्ति परिपूर्ण रूप से अक्षुण्ण रखने के लिये डी विटामिन की अतीव आवश्यकता हैं। इसका अभाव होने से बच्चे कमजोर, जीर्ण शीर्ण, पतली अस्थिवाले, रुग्न तथा रिकेट वाले होते हैं एवं दाँत मजबूत नहीं होते, दाँतों में कीड़ा लग जाता है, शरीर का गठन भी उत्तम नहीं होता तथा दाँत निकलते समय कष्ट पाते हैं। उनके शरीर में केलसियम तथा फासफरस का परिमाण कम हो जाता है। इससे शिशु-समूह अकाल में ही काल के गाल में पहुँच जाता है। मानव जीवन परि-पूर्ण स्वस्थता के साथ संजीवित रखना हो तो शिशु-जीवन से मृत्यु तक प्रचुर परिमाण में डी प्रजीवक तत्त्व को काम में लेना चाहिये। इस कारण से सख्त बीमार होने पर चिकित्सक-वृन्द डी विटामिन अधिक देते हैं।

विटामिन ई का अभाव होने से बन्धत्व (सन्तान-उत्पादन शक्ति का अभाव) शुक्र-तारल्य, शिश्न की कमजोरी, ध्वजभंग आदि बीमारियां होती है। सीधी बात में रमणी का गर्भाशय एवं पुरुष का वीर्य्याशय ही इसका आधार है अर्थात् रमणी का गर्भाशय परिपुष्ट नहीं होता तथा सन्तान उत्पन्न करने के मूल तत्त्व का भी अभाव होता है, तद्रूप पुरुष का वीर्याशय अर्थात् पुरुष के वीर्य में उज: पदार्थ कम होने से एक ओर जैसे शुक्र कीट उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार शुक्र-संबंधी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। भोज्य वस्तुओं

में "ई" प्रजीवक तत्त्व प्रभूत परिमाण में रहने से उपर्युक्त बीमार नहीं होगा तथा कोई भी स्त्री पुरुष वंध्या नहीं हो सकता है। सच्ची बात तो यह है कि यह हमारा ओजः धातु है जो सब धातुओं से श्रेष्ठ है। वंध्या स्त्री पुरुष या पतले वीर्य वाले वा ध्वजभंग मानव यदि स्थिर चित्त दीर्घ समय तक दूसरे प्रजीवक तत्त्वों के साथ यथोचित-भाव से प्रभूत परिमाण में प्रजीवक तत्त्व "ई" का सेवन करें तो परमपिता की कृपा से उनके निराशा जन्य मुँह में आनन्द की ज्योति प्रतिपात होती रहेगी एवं उसका निरानन्द तथा शिशु-शून्य सदन आनन्द का निकेतन बन जायगा और शिशुओं के कोलाहल से वे उत्तिष्ठ हो उठेंगे। जिस रमणी का कच्चा गर्भ नष्ट हो जाता है एवं शिशु-जन्म के बाद ही जिसकी सन्तान स्वल्प काल में ही यमराज का अतिथि बन जाती है, उनके लिए "ई" विटामिन भगवान् का आशीष जैसा है।

योग शास्त्र ओजः धातु को ब्रह्म-शक्ति मानते हैं। दूध का सार-भाग जैसा मलाई है, वैसा ही शुक्र का सार-भाग ओजः है। साँसारिक की तो बात ही क्या है धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले को भी सदा ही ओजः धातु शुद्ध रखना चाहिये।

वर्त्तमान युग के विज्ञान-शास्त्रियों ने विशेष रूप से स्वीकार कर लिया है कि शरीर-रक्षा के लिए प्रजीवक "ई" की विशेष आवश्यकता है। स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका सभी का भोज्य में "ई" खाद्य पदार्थ रहना ही चाहिए। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने अनन्त काल पूर्व से ही ओजः धातु की पुष्टि तथा वर्धन के लिए बारम्बार लिख गये हैं। किसी भी लाइन में जीवन की उन्नति करने की इच्छा हो, चाहे धार्मिक वा सांसारिक अथवा वैज्ञानिक यानी किसी भी लाइन में उन्नति करने के लिये मस्तिष्क की शक्ति स्थिर रखनी चाहिये, साथ ही जिससे वह शक्ति क्षय न होकर वृद्धि को प्राप्त हो

उस ओर तीव्र ध्यान रखना चाहिये। यह शक्ति स्थिर तथा वृद्धि करने की मूल है उजः। उसी उजः की सहायता करता है यह "ई" प्रजीवक तत्त्व।

फल-भोजन

आमः—आम जगत् में प्रसिद्ध है। इसके समान जगत् में और कोई दूसरा फल नहीं है। हमारे भारतवर्ष में आम बहुतायत से पैदा होता है। लाख-लाख धन्यवाद है उस परब्रह्म परमात्मा को जिसने हमारे देश में आम जैसा अमृत-फल पैदा किया। यहाँ से आम जहाजों द्वारा विलायत तक जाता है। आम बहुत दिन तक नहीं ठहरता। इसको बहुत दिन तक रखने की लोगों ने बहुत ही अच्छी तरकीब निकाली है। आम के मुख को मोम से अच्छी तरह बन्द कर देते हैं। फिर एक साफ़ टीन के कनस्तर या कांच के बड़े बर्तन में शहद भर कर उसी में आमों को डुबो देते हैं। ऊपर से बर्तन का मुख बन्द कर देते हैं। इस तरह रक्खा हुआ आम महीनों बाद जैसा का तैसा निकलता है। अगर यह तरकीब न निकलती, तो विलायत तक आमों का पहुँचना मुश्किल था, क्योंकि स्वेज़ नहर की राह से भी जहाज़ १५ दिन से पहले विलायत नहीं पहुँचते। जो आज कल आमों को रखते हैं और देश-देशान्तरों में इनका चालान करते हैं, उनको खूब नफ़ा होता है। आम जैसे फल को सारी दुनियां तरसती है। संस्कृत में आम के आम्र, रसाल, पिक-वल्लभ, फलश्रेष्ठ, स्त्री-प्रिय, वसन्त-दूत और नृप-प्रिय आदि बहुत से नाम हैं।

कच्चा आम—कच्चे आम को कैरी या कच्ची अमियां भी कहते हैं। यह कसैली, खट्टी, रुचिकारक, वात और पित्त को करने वाली है। बड़ा और बिना पका आम खट्टा, रूखा, त्रिदोष और

खून-फ़िसाद करने वाला होता है।

पका आम—मीठा, वीर्य-वर्द्धक, चिकना, बलकारी, सुखदायक, हृदय को प्यारा, वर्ण को उत्तम करने वाला और शीतल है। पित्तकारक नहीं है। कसैले रस वाला आम अगर दरख़्त पर पका हो तो भारी, वातनाशक, मीठा, खट्टा और कुछ कुछ पित्त को कुपित करता है।

क़लमी आम—कलमी आम को हिन्दी में मालदह आम और संस्कृत में राजाम्र कहते हैं। यह आम कसैला, स्वादिष्ट, स्वच्छ, शीतल, भारी, ग्राही और रूखा होता है, दस्त, कब्ज, अफारा और बादी करता है, लेकिन कफ और पित्त को नष्ट करता है।

आम का रस—बलदायक, भारी, वातनाशक, दस्तावर, हृदय को अप्रिय, तृप्ति करने वाला, अत्यन्त पुष्टि-कारक और कफ बढ़ाने वाला है। दूध के साथ जो आम खाया जाता है वह बादी और पित्त का नाश करता है तथा रुचिकारक, पुष्टिदायक, बलकारक और वीर्यवर्द्धक होता है, स्वाद में बहुत ही अच्छा, मीठा और तासीर में शीतल होता है। आम खाकर दूध पीना बहुत ही लाभदायक है।

आम का फूल—आम के मौर होता है उसे ही फूल भी कहते हैं। यह मौर रुचि-कारक, ग्राही और वातकारक है, अतिसार, कफ, पित्त, प्रमेह और दुष्ट रुधिर का नाश करता है।

आम की गुठली—आम की गुठली ही आम का बीज है। यह कसैली, कुछ खट्टी और मीठी होती है। वमन, अतिसार और हृदय की जलन का नाश करती है।

आम का अचार—आम के कितने ही प्रकार के अचार,

अचारी और मुरब्बे आदि तैयार किये जाते हैं। पके आमों के रस से "आम्रपाक" नाम का बहुत ही मजेदार, पुष्टिदायक और बलवर्द्धक पाक तैयार किया जाता है।

अधिक आम खाने से हानि—अत्यन्त आम खाने से मन्दाग्नि, विषमज्वर, खून-विकार, दस्त, कब्ज और आँखों के रोग होते हैं इसलिये बहुत आम न खाने चाहियें। मीठे आम से अधिक दोष खट्टे आम में होते हैं।

आम के दोष दूर करने का उपाय—अगर किसी ने बहुत आम खाये हों तो वह सोंठ को पानी के साथ खावे या जीरा काले नमक के साथ खावे, तब आम का दोष दूर हो जायगा।

कटहर—इसका कच्चा फल ग्राही, वातकारक, कसैला, भारी, दाहकारक, मधुर, बलदायक, कफ और मेद को बढ़ाने वाला है।

केला—मीठा, शीतल, ग्राही, भारी और चिकना होता है। कफ, पित्त, रक्त-विकार, दाह, घाव, क्षय रोग और बादी का नाश करता है।

पका केला—स्वादिष्ट, शीतल, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारक और मांस बढ़ाने वाला है, भूख प्यास, आंखों के रोग और प्रमेह का नाश करता है।

नारियल—इसका फल शीतल, दुर्जर, मूत्राशय को शोधने वाला, ग्राही, पुष्टिकारक, बलदायक और वात, पित्त, रक्त-विकार तथा दाह का नाश करने वाला है। कोमल नारियल का फल विशेष करके पित्त ज्वर और पित्त के दोषों को नष्ट करता है।

नारियल पुराना—भारी पित्तकारक, विदाही और

विष्टम्भी है।

नारियल का पानी—शीतल, हृदय को प्रिय, अग्नि-दीपक, वीर्यवर्द्धक, हलका, प्यास और पित्त को नाश करने वाला, मीठा और मूत्राशय को शुद्ध करने वाला है।

दाख, अंगूर और किशमिश—हीनगुण और भारी कच्चा अंगूर है। खट्टा अंगूर रक्त पित्त करने वाला है। पका हुआ अंगूर या पकी दाख दस्तावर, शीतल, आंखों को हितकारी, धातुपुष्टि करने वाली और भारी है। यह प्यास, ज्वर, श्वास, उल्टी होना, वातरक्त, कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्त पित्त, मोह, दाह, शोष और मदात्यय को नाश करती है। गाय के थन के माफ़िक दाख वीर्यवर्द्धक, भारी, कफ और पित्त को नष्ट करने वाली होती है। किशमिश वीर्यवर्द्धक, भारी, कफ और पित्त को नाश करती है।

खजूर—शीतल, रुचिकारक, भारी, तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, ग्राही, वीर्यवर्द्धक और बलदायक है। यह घाव, क्षयरोग, रक्तपित्त, कोठे की वायु, वमन, कफ, ज्वर, अतिसार, भूख, प्यास, खांसी, श्वास, मद, मूर्च्छा, वातपित्त और मद से हुए रोगों का नाश करता है।

बादाम—गरम, चिकना, वीर्यवर्द्धक, भारी और वात-नाशक है। बादाम की मींगी मीठी, वीर्यवर्द्धक, पित्त और वातनाशक, चिकनी, गरम, कफकारक और रक्त-पित्त-रोगी को नुक़सानदेह है।

सेब—वात तथा पित्तनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक, भारी, पाक में तथा रस में मधुर, शीतल, रुचिकारक और वीर्य को बढ़ाने वाला है।

नासपाती—हलकी, वीर्यवर्द्धक, बहुत मीठी, वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों को नष्ट करने वाली है। संस्कृत में इसे 'अमृतफल' कहते हैं।

तरबूज़—ग्राही, शीतल, भारी, आंखों को ताक़त देने वाला, पित्त और वीर्य को हरने वाला है। पका तरबूज गरम, खारी, पित्तकारक किन्तु कफ और वादी को नाश करता है।

खरबूजा—पेशाब लानेवाला, बलदायक, कोठों को साफ़ करने वाला, अत्यन्त स्वादु, शीतल, वीर्यवर्द्धक, पित्त और वात-नाशक है। जो खरबूजा खट्टे, मीठे और खारी रस का होता है, वह रक्त पित्त और घोर सोजाक पैदा करता है।

नारंगी—मीठी, खट्टी, अग्नि दीपन करने वाली और वातनाशक है। दूसरे प्रकार की नारंगी, खट्टी, बहुत गर्म, मुश्किल से पचने वाली, वातनाशक और दस्तावर है।

जामुन—बड़ी जामुन स्वादिष्ट, विष्टम्भी, भारी और रुचि-कारक है। छोटी जामुन का फल भी ऐसा ही होता है, विशेषकर दाह का नाश करता है।

बेर—पका हुआ और बहुत मीठा बेर शीतल, दस्तावर, भारी, वीर्य वर्द्धक, पुष्टिकारक है और पित्त, दाह रुधिर-विकार, क्षय तथा प्यास का नाश करने वाला है।

बहुत छोटा अर्थात् झाड़ी बेर खट्टा, कसैला, कुछ कुछ मीठा, चिकना, भारी, कड़वा और वात तथा पित्तनाशक है।

सूखा हुआ बेर दस्तावर, अग्निवर्द्धक, हलका होता है और प्यास, ग्लानि तथा रुधिर-विकार को नाश करता है।

चिरौंजी—चिरौंजी की मींगी मीठी, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातनाशक, हृदय को प्रिय, कठिनता से पचने वाली, चिकनी, विष्टम्भी और अग्नि बढ़ाने वाली होती है।

सिंघाड़ा—शीतल, स्वादिष्ट, भारी, वीर्यवर्द्धक, कसैला, ग्राही, वीर्य, वात तथा कफ को करने वाला है और पित्त, रुधिर-विकार तथा दाह को नष्ट करता है।

फालसा—पका फालसा पाक में मधुर, शीतल, विष्टम्भी, पुष्टिकारक, हृदय को प्रिय है और पित्त, दाह, रक्त-विकार, ज्वर, क्षय तथा बादी को नष्ट करता है।

शहतूत—पका शहतूत भारी, स्वादिष्ट, शीतल, पित्त और बादी को नाश करता है।

अनार—त्रिदोष-नाशक, तृप्तिदायक, वीर्य्यवर्द्धक, हलका, कसैले रसवाला, ग्राही, चिकना, बुद्धि और बलदायक है तथा दाह ज्वर, हृदय-रोग, कण्ठ-रोग तथा मुख की दुर्गन्धि को नष्ट करता है।

खट्टा अनार अग्नि को दीपन करने वाला, रुचिकारी, कुछ कुछ पित्तकारक और हलका है।

खट्टा अनार पित्त को उत्पन्न करने वाला होता है और वात तथा कफ को नष्ट करता है।

अखरोट—इसका गुण बादाम के समान है। विशेष करके कफ और पित्त को कुपित करता है।

कागजी नीबू—खट्टा, वातनाशक, दीपन प्राचन और हलका होता है यह नीबू कीड़ों का नाश करने वाला, पेट का दर्द आराम करने वाला, अत्यन्त रुचिकारक, वात, पित्त, कफ तथा

शूलवालों को अत्यन्त हितकारी है। त्रिदोष, अग्नि-क्षय, बादी की पीड़ा वालों को, विष से दुखियों को, अग्नि मन्द वालों को यह नीवू देना चाहिये। इस नीबू का छिलका बहुत पतला होता है। इसी कारण से इसे कागजी नीबू कहते हैं।

मीठा नीबू—इसे शर्बती नीबू भी कहते हैं। यह मीठा और भारी होता है। वात, पित्त, विष, साँप का जहर, खून-विकार, शोष, अरुचि, प्यास और वमन को नाश करता है, लेकिन कफ-सम्बन्धी रोगों को करता और बल तथा पुष्टि बढ़ाता है।

कमरख—शीतल, ग्राही, स्वादिष्ट और खट्टी होती है। कफ और वादी का नाश करती है।

इमली—कच्ची इमली खट्टी, भारी और वातविनाशक है तथा पित्त, कफ और रुधिर-विकार करने वाली है।

पकी इमली अग्नि-दीपक, रूखी, दस्तावर और गरम होती है एवं कफ और वात का नाश करती है।

फलों का महत्व

मनुष्य प्रकृति का ही एक श्रेष्ठ अंश है। प्रकृति से उसे केवल भोजन ही नहीं मिलता, बल्कि शिक्षा भी मिलती है। लेकिन आज कल मनुष्य के शरीर पर जितना भार इन्द्रियों का है, उससे कहीं अधिक दुर्वह भार विज्ञान नित नई नई आवश्यकताओं के आविष्कार द्वारा मनुष्य के जीवन पर लादता जा रहा है।

यूं तो हम हर चारों ओर उन्नति करने की कोशिश में लगे हुये हैं, लेकिन स्वास्थ्य-उन्नति की ओर हमारा ध्यान तक नहीं जाता। फलस्वरूप हमारा स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा है।

हम अपने पूर्वजों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातें सुन कर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? वे लोग खान-पान, रहन-सहन पर काफी ध्यान दिया करते थे लेकिन आज के नवयुवकों में ऐसी बातें नहीं। हमारे पूर्वज प्राकृतिक नियमों के आदेशानुसार ही चलते थे। उनकी लिखी दिन-चर्य्या पर यदि आज भी अमल किया जाय तो देखें कौन सा रोग हमें सता सकता है ।

हमारे पूर्वजों ने महीने में दो बार व्रत रखने की जो व्यवस्था की थी, सो उचित थी। व्रत के दिन फलाहार किया जाता था और १५ दिन तक शरीर में जितना विष एकत्र हो जाता था, वह एक दिन के उपवास और फलाहार से निकल जाता था। हम लोग आज कल व्रत रखते हैं, तो फलाहार के बदले पेड़ा, रबड़ी, मलाई आदि गरिष्ठ भोजन करते हैं। इस प्रकार के उपवास से लाभ के बदले हानि ही अधिक होती है। उपवास के असली उद्देश्य को ही हम भूल बैठे हैं।

धीरे धीरे हम अपने प्राचीन संस्कारों को भूलते गये और पाश्चात्य रीतिरिवाजों को अपनाते गये। फलतः रोगों की संख्या बढ़ी और बराबर बढ़ती ही जा रही है। उधर पाश्चात्य जातियों ने हिन्दू-संस्कारों को अपनाया और स्वास्थ्य-लाभ किया। अब उनमें उपवास चिकित्सा और फलाहार का खूब प्रचार है। यदि हमें स्वास्थ्य-लाभ करना है, तो हमें अपने इन प्राचीन रीति रिवाजों को फिर से अपनाना होगा।

हिन्दुओं में फलाहार की व्यवस्था आदर्श बन गई थी। जिस ऋतु में जो फल पाये जाते हैं, उस ऋतु में वही फल अधिक लाभ-दायक होते हैं। भगवान् ने प्रकृति का नियम ही ऐसा बनाया है।

आम को फलों का राजा कहा गया है। दूध में आम का रस मिलाकर पीने से लाभदायक सिद्ध होता है। इसके बाद केले का नम्बर आता है। केले में विटामिन (Vitamin) पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहते हैं। साधारणतया केले में निम्नलिखित पौष्टिक तत्व होते हैं:—

तरी	७५·३	प्रतिशत
खनिज पदार्थ	·८	"
चिकनाई	०·६	"
प्रोटीन	१·३	"
शकर	१८·२	"
स्टार्च	३·८	"

इनमें शकर का जो अंश है, उससे शरीर में सजीवता उत्पन्न होती है। डा० वाल्टर ऐडी ने पता लगाया है कि केले में कैलशियम, मैगनेशियम, फासफोरस, लोह एवं ताँबे का काफी अंश मिलता है। इसमें विटामिन (Vitamin) 'ए' और 'सी' भी काफी परिमाण में मौजूद हैं। विटामिन (Vitamin) 'बी' और 'जी' का भी अभाव नहीं है। मैगनेशियम, लोह और ताँबा रक्त के उस अंश को बनाने में समर्थ होते हैं जो मनुष्य के रग-पट्ठों में आक्सिजन भेजता है। केले में ये सारी चीजें प्रचुर मात्रा में मौजूद रहती हैं।

यदि बालकों को केला दिया जाय तो उनके शरीर में कैलशियम अधिक मात्रा में एकत्र होता जायगा और उनकी अँतड़ियों का परिष्कार अधिक सन्तोषजनक रूप से होगा। गर्भावस्था में केला देना बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है, क्योंकि इससे सिर्फ स्त्री ही नहीं स्वस्थ रहती, बल्कि उसका गर्भस्थ बालक भी कैलशियम ग्रहण करता है। क्षय रोग में केला बड़ा लाभदायक है।

केले के सम्बन्ध में कुछ सावधानी से काम लेना चाहिए। केले कच्चे या अधपके न होने चाहिएं। खूब पके केले का व्यवहार उत्तम है। केलों की अनेक जातियां हैं। कन्टाली केला मधु की तरह मीठा होता है और इससे 'प्रमेह' तक दूर होता है। मिलों, फैक्टरियों आदि में काम करने वाले व्यक्तियों को तो केले का अवश्य व्यवहार करना चाहिए।

इसके बाद टमाटर, जिसका शुमार सब्जी व फल दोनों में होता है, का नम्बर आता है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि रोज एक सेब खाने से डाक्टर के बुलाने की जरूरत नहीं पड़ती। रोज टमाटर खाने से भी डाक्टर के बुलाने की जरूरत नहीं पड़ती। टमाटर कच्चा भी खाया जाता है और उबाल कर भी। टमाटर खाने का उत्तम तरीक़ा यही है कि उसका रस निकाल कर उसमें थोड़ा नमक और गोल मिर्च डालकर पिये। स्व० महात्मा गांधी कहा करते थे कि टमाटर कच्चा खाने पर अधिक लाभकारी होता है। केला व टमाटर दोनों ही सस्ते फल हैं और हर स्थान पर मिल भी जाते हैं। टमाटर का शाक बनाकर भी खाया जा सकता है। उसे छीलना या भूनना नहीं चाहिये।

धनी आदमी अंगूर, सन्तरे, माल्टे, अनन्नास, पपीते आदि का व्यवहार करें तो उनके स्वास्थ्य में आशातीत सुधार हो सकता है। सन्तरे का रस कई बातों में घी दूध से बढ़कर लाभदायक है। घी-दूध का काम भीतर चिकनाहट उत्पन्न करना है, जब कि फल व फलों का रस खाल और गाल दोनों को सुन्दर और चिकना बनाता है। यह रस तुरन्त ही खून में मिलकर अपना लाभकारी काम शुरू कर देता है। पाठकों को फल खाने में अपने बुद्धि-विवेक का उपयोग करना चाहिए। यह नियम बना लेना चाहिए कि कोई

न कोई फल रोज अवश्य खाया जाय। सेब, नाशपाती आदि फलों को खाने से प्रथम चाकू से छीलने की प्रथा सी प्रचलित है। फल के ऊपरी भाग में ही प्रोटीन, विटामिन एवं लवण रहते हैं। छील देने से ये अंश अलग हो जाते हैं। फलों को ठीक तरह से धोकर छिलके सहित ही खाना उत्तम होता है।

आंवले का शरीर पर प्रभाव

हमारे आयुर्वैदिक ग्रन्थों में आंवले का प्रयोग ओषधि के रूप में अनेक रोगों को दूर करने वाला और स्वास्थ्य के लिये सहायक बताया गया है। इसकी पुष्टि आज-कल के नये अनुसन्धानों से भी होती है। कुन्नूर की आहार-अनुसन्धान-शाला में आंवले के ऊपर जो प्रयोग किये गये हैं, उनसे आंवला खाद्योजों (विटामिन) से परिपूर्ण पाया गया है। उदाहरण के लिये खाद्योज 'स' (विटामिन सी) को ले लीजिए। भोजन का वह अंश, जो मस्तिष्क और हृदय को बल देता है, आंवले में पर्याप्त रूप में पाया जाता है। इसकी कमी के कारण जो हानि होती है वह युद्ध अथवा समुद्री यात्रा के अवसर पर प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होती है। साधारण-तया हम इस की पूर्ति हरी सब्जी, फल, नीबू और सन्तरे के रस से कर लेते हैं।

लेकिन वैज्ञानिकों ने आंवले की परीक्षा करके बताया कि आंवले में सन्तरे की अपेक्षा ९०% खाद्योज 'स' अधिक होता है। एक छोटे आंवले में दो सन्तरे के बराबर खाद्योज 'स' रहता है। इसमें एक विशेष गुण यह भी है कि गर्म करने अथवा सुखाने पर इसकी यह शक्ति नष्ट नहीं होती। प्रायः सभी फलों के खाद्योज गर्म करने अथवा सुखाने पर नष्ट हो जाते हैं। पर आंवले में कुछ ऐसे आम्ल-

तत्व होते हैं जो इसको गर्म करने अथवा सुखाने पर इसके गुण को नष्ट नहीं होने देते।

सार्वजनिक रूप में इसका प्रयोग सबसे पहले १८४० में बिहार के अकाल के दिनों में किया गया था। अकाल-पीड़ितों को आंवले के चूर्ण की बनी हुई टिकियां खाने को दी गई थीं, इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा पड़ा था। उस प्रयोग की सफलता से उत्साहित होकर भारत सरकार ने आंवले की टिकियां काफी मात्रा में बाहिर युद्ध-क्षेत्रों में भेजी थीं।

आंवले की उपयोगिता पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है। अतः जनसाधारण को आंवले का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। आंवला जनवरी से अप्रेल तक हरा मिल सकता है। उत्तरी भारत में इसकी पैदावार बहुत अधिक है।

१. हरे आंवले को काटकर उसमें नमक और कालीमिर्च मिलाकर भोजन के पश्चात् खाना अतीव गुणकारी होता है।

२. हरे आंवले को आग में भून कर भी नमक के साथ खाया जा सकता है।

३. धनियां पोदीना मिलाकर इसकी चटनी भी पीसी जा सकती है। अन्तर केवल इतना ही है कि खटाई के स्थान पर आंवले का प्रयोग किया जावे।

४. सूखे आंवले भी काम में लाये जाते हैं। ४,५ घण्टे पानी में भिगोकर चटनी पीसी जा सकती है।

५. करेले की सब्जी में खटाई के स्थान में आंवले का प्रयोग लाभदायक है।

६. हरे आंवले को उबाल कर इसकी लोंजी भी छौंकी जा सकती है और कई दिन तक खराब नहीं होती है।

७. भोजन के पश्चात् आंवले के सूखे टुकड़ों को सुपारी की तरह चबाना और पपोलना लाभदायक होता है।

८. रात्रि के समय इसका चूर्ण दूध के साथ लेने से दस्त साफ होता है, यह बालों और नेत्रों को बल देता है।

९. इसका चूर्ण शहद के साथ खाने से हृदयोद्वेग, मन्दाग्नि, दुर्बलता में बहुत लाभदायक होता है।

१०. आंवले का मुरब्बा चांदी के वर्क के साथ खाने से ग्रीष्म-ऋतु में शीतलता प्रदान करता और शक्तिवर्धन करता है।

११. आंवले के टुकड़े करके और रात्रि को भिगो कर सुबह उसके जल से केशों को धोने से नेत्रों की ज्योति में वृद्धि होती है एवं बाल काले और मुलायम बने रहते हैं।

फल, शाक-सब्जी तथा अन्न

कानपुर के होम्योपैथिक के एक बड़े डाक्टर ने 'स्वास्थ्य' पर एक बहुत उत्तम पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने प्रत्येक प्रकार के फल तथा शाक-सब्जी के गुण वर्णन किये हैं। कुछ का विवरण नीचे दिया जाता है उससे हमें लाभ उठाना चाहिये।

महुआ—ठंडा है, भारी है, धातुओं को बढ़ाता है। बल वीर्य उत्पन्न करता है। मल, पित्त तथा जलन को दूर करता है। खांसी को हटाता है।

दाख(द्राक्ष)—रेचक है, शीतल है, नेत्रों को बल देती है, धातुओं को बढ़ाती है, मल मूत्र को साफ करती है।

पपीता—गर्म है। शूल, उदर रोग, बवासीर, मज्जा, वात, कफ

को दूर करता है।

मुनक्का—दाख के समान गुण है। भारी होती है, कफ पैदा करती है, वीर्य को नाश करती है।

आंवला—शीतल है, वात को दूर करता है, वीर्य को पैदा करता है। रक्त, प्यास, खांसी और पित्त को शुद्ध करता है।

ब्राह्मी—शीतल है, दस्तावर है, मेधा शक्ति उत्पन्न करती है। स्वर को शुद्ध करती है, आयु को बढ़ाती है। स्मृति को उत्पन्न करती है। ज्वर, प्रमेह तथा रक्तदोष को विच्छिन्न करती है।

गोभी—वातवर्द्धक है, अरुचि पैदा करती है, शीतल है, बल-दायक है।

बथुआ—जठराग्नि को जागृत करता है, रुचि को बढ़ाता है, तिल्ली, बवासीर तथा कफ के रोगों को दूर करता है।

चौलाई—हल्की होती है, शीतल है, रूखी है।

पालक—वात पैदा करता है, मल को भेदन करता है। बल-कारक है। श्वास के रोगों को दूर करता है।

मूली—मूली का नवीन पत्ता पाचक है, हल्का है, गर्म है, कफ व पित्त को दूर करता है। ज्वर, सांस को दूर करता है। स्वर को कोमल बनाता है। नेत्रों तथा कंठ को लाभकारी है।

अजवायन—रुचि करती है, गर्म है, वात, कफ व शूल को दूर करती है।

छोटा परवल—पित्त को नष्ट करता है। दीपन, पाचन तथा हल्का है। वीर्य को बढ़ाता है। ज्वर, खांसी, पेट के कीड़ों को दूर

करता है। अग्नि को शान्त करता है, कृमि-रोगों को नष्ट करता है। परवल की जड़ शौच आसानी से लाती है।

सरसों का शाक—मल-मूत्र को बढ़ाता है। रूखा है, पेशाब को कम करता है।

चने का शाक—पाचन को भारी है। मसूड़े की सूजन को दूर करता है तथा पित्त को नष्ट करता है।

केले के फूल का शाक—ठण्डा है। वात पित्त को हरने वाला है। रक्त, पित्त तथा क्षय रोग को हरता है।

सीताफल—भारी होता है पर वीर्य तथा धातुओं को बढ़ाता है। पित्त जात को उत्पन्न करता है कफ को पैदा करता है।

ज्वार—यह भी रूखी होती है और चरबी तथा लवणहीन में इसे भी प्रोटीन वाले पदार्थों के साथ खाना चाहिये।

दाल—दाल कम खानी चाहिये। मल मूत्र को बन्द करती है। मूंग व मसूर को छोड़ कर और दालों से आफरा पैदा होता है।

मूंग—रूखी है, हल्की है, कोष्ठवर्द्धक है, कफ और पित्त को दूर करती है, आंखों के लिये भी लाभकारी है। हरी मूंग सबसे अच्छी होती है।

उड़द—भारी होता है तथा देर में पचता है। इसमें प्रोटीन अधिक होता है, बल, वीर्य और धातुओं को बढ़ाता है। कफ और पित्त को भी बढ़ाता है। इसमें मछली तथा दही के समान चरबी का अंश पाया जाता है। बड़ा उड़द अधिक लाभदायक होता है।

मसूर—हल्का है पर खुश्की पैदा करता है।

अरहर—अधिक खुश्क है, कफ भी पैदा करता है।

चना—शीतल है, रक्त पित्त व कफ को कम करता है, तेल में भुना हुआ चना लाभदायक तथा बलदायक होता है। सूखा भुना हुआ चना खुश्की करता है। भिगोया हुआ चना ठंढा व तरावट पैदा करने वाला है।

मटर—स्वादिष्ट है पर देर में पचता है।

सरसों—गर्म है। कफ व वायुनाशक है। खून व पित्त की पीड़ा को बढ़ाता है।

राई—तेज व गर्म है, जलन पैदा करती है, परन्तु सूजन को दूर करती है।

दूध—परिपूर्ण भोजन है। अन्न स्थिर रखने में समर्थ है। सब से अच्छा तरीका दूध पीने का यह है कि इसे थोड़ा थोड़ा चुसकी के साथ पीना चाहिये।

दही—रक्त, पित्त और कफ को पैदा करता है। खट्टा या अच्छी तरह न जमा हुआ दही हानिकारक है। उत्तम दही वीर्य को बढ़ाता है। रात में दही नहीं खाना चाहिये।

छाछ—गर्म है। दीपन तथा वीर्य को बढ़ाती है और तृप्तिकारक है यह घी निकाले हुए मठे के गुण हैं। जिसमें से घी न निकला हो वह कफ उत्पन्न करता है। सोंठ व सेंधा नमक मिला कर पथ्य है। जिसको घाव हो, मूर्च्छा आई हो, जलन होती हो, टट्टी में वात का दर्द होता हो उसे नहीं पिलाना चाहिये।

मक्खन—बल व हाजमे को बढ़ाता है। वर्ण को सुन्दर बनाता है, संग्रहणी, क्षय, बवासीर तथा पुरानी खांसी को दूर करता है। बच्चों व बूढ़ों के लिये विशेष लाभदायक है। मस्तिष्क को भी बल

देता है। चरबी बढ़ाने वाले पदार्थ में अच्छा है, सबसे जल्दी पचता है, बिगड़ा हुआ मक्खन विष के समान है, घी की अपेक्षा मक्खन में विटामिन ज़ोरदार होता है।

घृत—पित्त, स्मृति व बल को बढ़ाने वाले पदार्थों में अच्छा है। ज्वर तथा शूल को निर्मूल करता है, सुन्दरता, कांति, ओज, तेज की वृद्धि करता है। क्षय तथा रक्त रोगों को नष्ट करता है। गौ-घृत नेत्रों के लिये लाभकारी है।

नोट—राजयक्ष्मा में और बालकों को आंव अतिसार के रोगों के ज्वर में मन्दाग्नि में घी नहीं खिलाना चाहिये।

पेठा—दिमाग तथा वीर्य के लिये पुष्टिकारक है और बल को बढ़ाता है। अरुचि करता है, काम और वात को नष्ट करता है।

लौकी—पित्त को नष्ट करती है। रुचि को बढ़ाती है, वीर्य उत्पन्न करती है तथा पुष्टि करती है।

ककड़ी—रूखी तथा भारी होती है, अरुचि करती है, पकी हुई ककड़ी गर्म होती है।

चिचिंडा—इसके गुण परवल से मिलते जुलते हैं। वात को नष्ट करता है, पथ्य है, रुचि को बढ़ाता है।

करेला—ठंढा है। भेदन करने वाला है। हलका होता है। वात, पित्त तथा ज्वर को नष्ट करता है और क्रुमि-नाशक है।

तुरई—ठंडी होती है, पित्त को नष्ट करती है, स्वास स्वर तथा कृमि को नष्ट करती है।

बैंगन—गर्म है, पित्त को नष्ट करता है। ज्वर, वात व कफ को दूर करता है। अग्नि को बढ़ाता है। तेल में बनाया हुआ भरी

हो जाता है।

आलू—ठंढा है, भारी होता है। मय छिलके के ही भाजी के काम में लाना चाहिये। पित्त को नष्ट करता है।

टमाटर—ठंढा होता है, बल बढ़ाता है तथा रक्त को शुद्ध करता है, इसमें बैंगन जैसे गुण हैं।

मटर की फली—देर में पचती है, परन्तु बल बढ़ाती है, शरीर में रक्त को दूषित करती है।

चुकन्दर—रक्त को बढ़ाता है, शरीर की ग्रन्थियों को मजबूत करता है, वीर्यवर्द्धक है।

शलजम—इसमें चुकन्दर जैसे गुण ह।

टिण्डे—रक्त को शुद्ध करता है तथा बल को बढ़ाता है। नेत्रों के लिये भी लाभकारी है।

गाजर—शरीर की स्नायुओं को पुष्ट करती है। त्वचा को शुद्ध करती है पर देर में पचती है।

अन्न वर्गीय

गेहूं—मुख्य भोजन है, मिल चक्की के पिसे आटे में जीवन शक्ति नहीं होती। हाथ से पिसा हुआ विना छना हुआ पोषक तथा शक्तिवर्धक है। गेहूँ का दलिया बहुत ही लाभकारी है।

चावल—चावल कब्जियत करता है, पहाड़ी स्याही ग्राहिला चावल लम्बा और सुगन्धित होता है तथा मस्तिष्क को बल देता है। पालिश किये हुए चावल में जीवन-शक्ति नहीं रहती। वायु, कफ को पैदा करता है।

बाजरा—गर्म होता है, कफ व पित्त को नष्ट करता है, वीर्य

को नष्ट करता है। शीघ्र पच जाता है। इसको प्रोटीन वाले पदार्थों के साथ दाल, दूध दही के साथ खाना चाहिये।

मलाई—अधिक गरिष्ठ तथा ओजवर्द्धक है। इसमें नवजीवन गुण अधिक होता है।

खिचड़ी—बल को बढ़ाती है, भारी होती है।

खीर—बल करती है, पुष्टिकारक है, धातुओं को सबल बनाती है और वात को हरती है।

सेवईं—भारी है, बल को बढ़ाती है तथा पित्त को नष्ट करती है। बहुत नहीं खानी चाहिये।

दूध की लस्सी—हल्की होती है, वीर्य व बल को बढ़ाती है, रुचि उत्पन्न करती है।

जौ की रोटी—कफ, खांसी, मेदे के रोग व गले के रोगों में गुणकारी है। बल उत्पन्न करती है।

चने की रोटी—कफ, पित्त और रुधिर को नष्ट करती है। नेत्रों के रोगियों को हानि पहुँचाती है।

पूरी—घी की पकाई हुई नेत्रों को लाभ करती है। रुचि को बढ़ाती है पर देर में हजम होती है। तेल की पूरी से बचना चाहिये।

कढ़ी—पाचक होती है। अग्नि को दीपन करती है तथा कफ और वात को नष्ट करती है, बहुत न खानी चाहिये और न बासी कढ़ी खानी चाहिये।

मूंग के बड़े—हल्के होते हैं। इसकी सुखाई हुई बड़ियां भी लाभकारी हैं।

बालूशाही—धातुओं तथा वीर्य को बढ़ाती है। वात व पित्त

को नष्ट करती है।

फेनी—दूध के साथ खाई जाती है तथा बल को बढ़ाती है व वीर्य को पुष्ट करती है। बालूशाही से हल्की है।

मोतीचूर के लड्डू—मूंग की दाल के हलके होते हैं व बेसन के भारी, पुष्टिकारक हैं। वात व कफ को दूर करते हैं।

जलेबी—कान्ति को बढ़ाती है, पुष्टिकारक है, स्नायु की निर्बलता को दूर करती है और नेत्र की ज्योति बढ़ाती है।

श्रीखंड—सम्पूर्ण इन्द्रियों को बल देता है, आयुर्वेद में इसे सबसे ऊंचे खाद्यों में मानते हैं। बल, रुचि, वीर्य बढ़ाने के अतिरिक्त यह पीनस व तृष्णा को दूर करता है।

कच्चे आम का शरबत—आग में भून कर शरबत बनाया जाय तो बल को बढ़ाता व इन्द्रियों को स्फूर्ति देता है। लू लगने से बचाता है और लू लगने की औषधि भी है।

नींबू का शरबत—वात को दूर करता है। पाचनशक्ति को बढ़ाता व बल देता है।

चाय—अच्छी मात्रा में दूध व चीनी डाल कर पीने पर वात और कफ को दूर करती है। स्फूर्ति उत्पन्न करती है। खुश्की उत्पन्न करती है। अविवाहित युवक व युवतियों के लिये हानिकारक है।

गुलाब—शीतल है, हल्का है, वीर्य को बढ़ाता है। पाचक व दस्तावर है। इसका बना गुलकन्द विरेचक होता है।

शहद—बड़ी मक्खियों का शहद सर्वोत्तम है। बवासीर, क्षय, स्वास, खांसी को दूर करता है। सफेद शहद वीर्य को पुष्ट तथा रक्त को शुद्ध करता है।

भोजन

चबा-चबा कर भोजन करना ॥
हाथ, पैर, मुंह धोकर आओ ।
लोटे में जल भरकर लाओ ।
ताजा खाना हर दिन खाओ ।
बासी खा, बीमार न पड़ना ॥

देख-देखकर खाना खाओ ।
मक्खी बैठे, उसे भगाओ ।
ठहर-ठहर कर खाना खाओ ।
जल्दी खाकर पेट न भरना ॥

चबा-चबाकर खाना खाओ ।
कभी-कभी जल पीते जाओ ।
धीरे-धीरे थोड़ा खाओ ।
ज्यादा खाकर कभी न मरना ॥

छोटे-छोटे ग्रास बनाओ ।
धीरे-धीरे खूब चबाओ ।
ठहर-ठहर कर खाते जाओ ।
बहुत गरम खा, कभी न जलना ॥

(खिलौने से उद्धृत)

वायु

शरीर को तीन प्रकार के भोजन की आवश्यकता है वायु, जल तथा अन्न । सब से अधिक वायु की है ।

हमारे शरीर में प्रत्येक समय क्रिया होती रहती है कि अन्दर

से विषैली वायु बाहर निकलती है और सांस द्वारा वायु अन्दर जाकर रुधिर को साफ करती है। यदि हम शुद्ध वायु सांस के ज़रिये अन्दर न ले जायें तो हम बीमार पड़ जाते हैं। अतः सदा स्वच्छ वायु में नाक के जरिये सांस लेना चाहिये। जिस कमरे में सोयें या रहें वहां की खिड़कियां और दरवाज़े खुले रहें। मुंह बन्द करके कभी नहीं सोना चाहिये। बरामदे में सोने से और लाभ होगा। मुंह से सांस हरगिज़ नहीं लेना चाहिये। खुली जगह में लम्बी सांस लें तो बहुत लाभ होगा। बन्द स्थान में, जिस में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता, वहां की भी वायु दूषित हो जाती है।

चर्म के छेद द्वारा भी हम सांस लेते हैं। इसलिये हम को नहाते समय सब छेदों को अच्छी तरह मलना चाहिये। पहिले दरदरे कपड़े से छेदों को मलना चाहिये फिर साफ कपड़े से बदन पोंछ लेना चाहिये। यदि किसी को गठिये का रोग हो तो गर्म वायु की भाप देने से पसीना आ जायेगा और जोड़ ढीले पड़ जाने से लाभ होगा।

जिसको ज्वर हो जाय और ताप अग्नि से जल रहा हो उसको नंगा करके खुली वायु में सुला देना चाहिये। जब शरीर ठंढा हो जाय तो वस्त्र पहना देना चाहिये। यदि गर्मी में ज्वर चढ़ा हो तो उस वक्त तक ऊपर की दशा में रखना चाहिये जब तक उसका शरीर कॉंपने न लगे और उसे वस्त्र पहना कर खुले वायु में सुला देना चाहिये।

रोगी को वायु-परिवर्तन से भी लाभ हो जाता है। वायु-परिवर्तन का स्थान अच्छा हो।

पाखाने से घर की वायु बहुत खराब हो जाती है। पाखाने खुले स्थान में बनवाने चाहियें या बाहर जाने का प्रबन्ध हो। घर में जावें तो बर्तन में राख डाल देवें। आबदस्त कदमचे से अलग हो।

पाखाने की मोरी भी खूब साफ हो ।

घर में प्रत्येक स्थान पर थूकना और पेशाब नहीं करना चाहिये। मिट्टी वाले स्थान में पेशाब करे या थूके तथा कूड़ा हर जगह न फेंक दें।

पानी

(१) जीवन के लिये पानी का दूसरा दरजा है। शरीर में ७० प्रतिशत पानी है। सभी भोजन में कुछ न कुछ पानी का अंश रहता है।

(२) जो पानी पीने के काम आवे वह अति शुद्ध होना चाहिये। वर्षा का जल बहुत शुद्ध होता है। सबसे अच्छा जल पीने के लिये वह है कि आधे घण्टे गर्म करके मोटे कपड़े में बिना हिलाये छान लेना चाहिये और ठंडा हो जाने पर काम में लाना चाहिये।

(३) कच्चे कुएं का पानी दूषित हो जाता है। कुओं में ढलुआ जगत बनाना चाहिये, जिससे गन्दा पानी अन्दर न जाये।

(४) नदी में इस बात का ध्यान हो कि जिस स्थान में लोग पाखाने जाते हों या गन्दा मल गिरता हो वहां का जल कभी न लें। जहां का पानी पीने के काम में लावें वहां पर न तो मल मूत्र का त्याग करना चाहिये न मुरदों को जलाना चाहिये।

(५) जल दो प्रकार का होता है हलका तथा भारी। भारी जल में साबुन मलने से झाग बहुत कम उठते हैं। अन्न भी मुश्किल से गलता है तथा पाचन शक्ति खराब हो जाती है। हलका जल पीने के काम लाना चाहिये। उसका स्वाद मीठा तथा फीका होता है।

जब जब प्यास लगे प्यास शान्त करने के लिये पानी पीना चाहिये। भोजन यदि गले से न उतरे तो समझ लो कि भली प्रकार से चबाया नहीं गया या मैदे को भोजन की आवश्यकता नहीं। भोजन में मिर्च मसाला आदि कम हो तो पानी कम पीना पड़ेगा। ताजा

मेवा खाने से पानी बहुत ही कम पीने की इच्छा होती है।

एक डाक्टर की सम्मति

हवा, पानी तथा अन्न, यह तीनों वस्तुयें हमारा भोजन है। सबसे पहला भोजन वायु, दूसरा जल और तीसरा अन्न।

कौन सा अन्न खाना चाहिये, कब खाना चाहिये और कैसा, इस पर बहुत मतभेद है। इसको निश्चय करने के लिये हमको जान लेना चाहिये कि मनुष्य खाने के लिये उत्पन्न नहीं हुआ बल्कि अपने उत्पन्न करने वालों के पहचानने के लिये। अतः हमको उतनी खुराक खानी चाहिये जिससे हम नीरोग रह सकें। नीरोग रहने के लिये यह आवश्यक है कि हमको अपने स्वाद को वश में करना चाहिये। इन्द्रियों को वश में करने के लिये जहां तक हो सके मिताहारी होना चाहिये। सब तरह के मसाले, लाल मिर्च, शराब, तम्बाकू, बीड़ी, भांग, चरस, चाय, काफी, कोको आदि सभी वस्तुओं को छोड़ना चाहिये, क्योंकि यह खाने पीने की वस्तु नहीं हैं। जो भोजन करें वह पुष्टिकारक हो जिससे खून बने और जो भोजन खावें वह अच्छी तरह से पच जाय। जब भोजन अच्छी तरह से पच जाता है तब दस्त थोड़ा और बंधा हुआ तथा चिकना दुर्गन्ध रहित तथा काला होता है।

अधिक भोजन करने से नींद कम आती है, स्वप्नदोष हो जाता है तथा सवेरे जीभ का स्वाद बिगड़ा रहता है। जो कुछ भोजन करें अच्छी तरह चबाकर खावें। इतना चबावें कि मुंह में रस बन कर गले के नीचे उतर जावे। हरे फल सब से अच्छा भोजन है तथा सूखे फल भी काम में लाने चाहियें। अखरोट, अनन्नास, बादाम, खजूर, आलूबोखारा, अंजीर, सन्तरा, नीबू, मूंगफली इत्यादि।

अमरूद से खून साफ होता है तथा केला भी बहुत अच्छा

है, रोटी के साथ खाना चाहिये। जैतून के तेल को रोटी में चुपड़ कर खाना चाहिये।

काफी का प्रयोग नहीं करना चाहिये। काफी की जगह में गेहूँ को अच्छी तरह से साफ करके कढ़ाई में भूनना चाहिये। जब खूब लाल हो जाय और कालापन आ जाय तब उसको चक्की में दल लेना चाहिये। एक चम्मच प्याले में डाल कर खौलता पानी छोड़ना चाहिये और एक मिनट तक चूल्हे पर रख दिया जाय। तब दूध शक्कर मिला कर पीना चाहिये। काफी की जगह पर अदरख का रस पीने में इच्छा पूर्ण हो सकती है। अनाजों में सबसे अच्छा अनाज गेहूं है। ज्वार, बाजरा तथा मक्का की भी गिनती अनाज में की जा सकती है। गेहूं को हाथ की चक्की से पीस कर बिना छने हुये आटे की रोटी बनानी चाहिये। बाजार की बनी रोटी निकम्मी होती है। गेहूँ का दलिया भी बना कर खूब पकाकर खावे, अच्छी खूराक है। चांवल में सत नहीं होता है।

चना, उड़द, अरहर, मटर, मूंग, मसूर इन वस्तुओं की खूराक भारी है। इनको पचाने के लिये मेदे को बड़ी अग्नि चाहिये और दाल खाना बहुत ही कम कर देना चाहिये। शाक पात बहुत खाना अच्छा है। नमक भी छोड़ दें तो बहुत ही लाभ है।

दूध बहुत अच्छा गाय, भैंस का पीना चाहिये। दूध का काम जैतून का तेल भी अधिक अंश में कर सकता है। बादाम के छिलके को अलग करके उसे पीस कर पानी में पी लेने से दूध का गुण प्राप्त हो सकता है। चौमासे के दिनों में भोजन बड़े लोगों को एक बार ही करना चाहिये तथा आठ दिन में एक समय उपवास करने से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है। ऐसी भी आदत डालनी चाहिये कि सूर्य अस्त होने के पहले ही शाम का भोजन कर लेना चाहिये।

पोशाक

आरोग्यता आहार के साथ साथ कई अंशों में मनुष्य की पोशाक पर भी निर्भर है। पोशाक में जूते तथा जेवर भी शामिल हैं। हमारा देश भारतवर्ष गर्म देश है, इससे ढीले ढाले कपड़े तथा सफ़ेद पोशाक ही पहननी चाहिये। रंगीन कपड़े पहनने से सूर्य की किरणों का प्रभाव दूसरा ही हो जाता है। जाड़े में रंगीन कपड़े पहनने से बहुत कम हानि है। सर हमेशा खुला रहना चाहिये जब तक कि विशेष आवश्यकता न जान पड़े। जाड़े में आवश्यकता होने पर अधिक कपड़े पहनने में कोई हर्ज नहीं। नंगे पैर भी कुछ देर चलना चाहिये। जब गर्मी या सर्दी अधिक हो तो तलवे को बचाने के लिये जूते पहन लेवें। हरदम जूते पहनने से, विशेषकर गर्मी के दिनों में, हानि हो जाती है। मोजा बहुत कम पहनना चाहिये। गर्मी में तो मोजे नहीं पहनने चाहियें, क्योंकि पसीना होकर बदबू निकलने लगती है। आभूषण तो बहुत ही कम औरतों को पहनना चाहिये। अधिक आभूषण पहनने से नाक, कान तथा दूसरे अंगों में मैल जम जाता है। पुरुषों को तो बाल नहीं बढ़ाना चाहिये, क्योंकि उससे सर में तेल जम जाता है और उससे रोग पैदा हो जाता है। हम लोग गर्म देश के वासी हैं। हमको सर्द देश के रहने वालों का अनुकरण नहीं करना चाहिये। अधिक कपड़े पहनने से शरीर आलसी हो जाता है। यह बात हमको न भूलनी चाहिये कि हम केवल नासिका से ही सांस नहीं लेते किन्तु चर्म के छिद्रों द्वारा भी वायु हमारे अन्दर प्रवेश करती है। सारा शरीर ढक लेने से चर्म के छिद्र बन्द हो जाते हैं तथा वायु शरीर के अन्दर बहुत मुश्किल से पहुंच पाती है, उसके कारण मनुष्य रोगी हो जाते हैं।

शरीर की शुद्धि

शरीर की शुद्धि से स्वास्थ्य लाभ होता है तथा मनुष्य की आत्मा भी शुद्ध हो जाती है। यह शरीर असंख्य छिद्रों से पूर्ण है। इन छिद्रों से शरीर के भीतर का मल पसीने द्वारा बाहर निकलता है जिस प्रकार कारखानों में दिन रात काम होने से बहुत सा मल बाहर निकला करता है उसी प्रकार शरीर रूपी कारखाने में निरन्तर काम होने से कई पौण्ड मल मूत्र पसीने के रूप में निकला करता है। तीनों मार्ग शुद्ध व साफ रखने चाहियें तभी अन्दर का मैल खारिज होकर शरीर शुद्ध हो सकता है। शरीर को जल से स्नान द्वारा शुद्ध रक्खा जावे। शुद्ध रखने का मतलब यह है कि शरीर को अच्छी तरह मल मल कर साफ किया जावे जिससे प्रत्येक छिद्र का मुंह साफ खुला हुआ और इस योग्य हो जावे कि आसानी से भीतर का मल बाहर निकल सके। नाममात्र स्नान करने से छिद्र का मुंह बन्द सा हो जाता है और भीतर का मल बाहर न निकल सकने से शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण होता है। इसलिये प्रत्येक इन्द्रिय को शुद्ध रखने से उनकी नीरोगता बनी रहती है तथा मनुष्य शुद्ध व स्वस्थ हुआ करता है।

सफाई के विषय में हमारे पूर्व पुरुषों ने बहुत कुछ लिखा है और ऊंचा स्थान दिया है। सफाई में स्नान और नखों की सफाई, दंतधावन, शरीर की मालिश, धुले वस्त्रों का धारण करना शामिल है। स्नान इस प्रकार से किया जावे कि शरीर का मैल दूर होकर त्वचा दृढ हो जाय और उसमें जीवनी शक्ति उत्पन्न हो जावे। स्नान ठंढे जल से ही और प्रातःकाल करना चाहिये। जिनका शरीर निर्बल है तथा जो गुर्दे के रोग से पीड़ित हैं उनको गर्म जल के स्नान से लाभ होता है। गर्म जल से स्नान के बाद ही वदन

पोंछ कर वस्त्र पहन लेना चाहिये।

भोजन का समय प्रातःकाल दोपहर के पहिले ही अच्छा है। भोजन के पहले दोपहर व शाम को भी स्नान कर लेने से उत्तम होता है। ठंडे पानी से स्नान करने से आत्मशक्ति तीव्र हो जाती है। दो वस्त्र शरीर पोंछने के लिये रखने चाहियें एक खुरखुरा हो तथा दूसरा मुलायम खुरखुरे वस्त्र से शरीर के प्रत्येक भाग को खूब रगड़ना चाहिये, विशेष कर पेट को। स्नान करके सूखे तौलिये (वस्त्र) से बदन पोछ लेना चाहिये। जिनका शरीर बहुत कम-ज़ोर हो तथा बुख़ार उग्र हो तो उसके बदन को डाक्टर से पूछ कर गुनगुने जल से अंगोछा करना चाहिये। पहले एक मोटे कपड़े से, तौलिये को जल से भिगो कर शरीर को दो बार रगड़ कर सूखे तौलिये से रगड़ना चाहिये।

अंगोछा पहले सिर से शुरू हो, फिर उसके पश्चात् हाथ व उसके नीचे के अंग। रोगी को ठंढे वायु से वचने के लिये वस्त्र सुरक्षित रखने चाहियें।

शरीर पर तेल मालिश करके स्नान करने से बहुत लाभ होता है। मालिश के बाद थोड़ी देर रुक कर स्नान करना चाहिये। बेसन व साबुन को भी नहाते समय शरीर पर मलना चाहिये। बेसन के मलने से शरीर पर रूखापन कम होता है।

छोटे बच्चों के भी तेल लगाना चाहिये। छोटे बच्चों को एक चौड़े टब में स्नान कराने से लाभ होता है। टब में पानी इतना भरना चाहिये कि सिर व मुंह ऊंचा रहे जिससे आंख, नाक व कान में जल न भर जाय।

सबसे उत्तम स्नान स्रोत जल, उसके बाद नदी और सबसे निकृष्ट सरोवर में स्नान करना होता है। स्नान करते समय मूत्र

निकलने की इन्द्रिय को भी साफ कर लेना चाहिये।

मुंह को नीम या बबूल की दातुन से नित्य साफ करना चाहिये। उसके पश्चात् तेल व नमक से मसूड़े व दांतों को धीरे धीरे मलना चाहिये। नमक पीस कर कपड़े से छान कर रख लेना चाहिये। सरसों का तेल शुद्ध हो। दांतों को ब्रुश से साफ करने की जो प्रथा चल पड़ी है, वह बड़ी हानिकारक है। यदि कभी ब्रुश से दांत साफ करने की आवश्यकता पड़े तो ब्रुश को अच्छी तरह साफ करके बहुत हलके 'Carbolic lotion' की शीशी में डुबो कर रख देना चाहिये। ऐसा करने से दांतों को 'जर्म्स' से हानि नहीं होगी।

इस बात को भलीभांति नोट कर लेना चाहिये कि नहाने के पश्चात् कान में कोई बूंद पानी की न रह जावे। रुई की फरहरी बना कर आहिस्ते से पानी को निकाल देना चाहिये। ऐसे ही नाक की प्रणाली समझ लेनी है।

कान तथा चक्षु

शरीर में कान तथा चक्षु बहुत उपयोगी अंगों में से हैं, इनकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये।

शरीर में वीर्य की कमी तथा सर्दी लग कर कान की झिल्लियों में प्रकोप उत्पन्न हो जाता है। कान में जल भरने से भी दर्द होने लगता है। कभी कभी कान में कड़वा तेल डाल लेना चाहिये। सिर में अधिक सरदी लगने से या हलक खराब हो जाने से कान के परदे में सूजन पैदा हो जाती है। दांतों की खराबी से भी कान में दर्द हो जाता है। स्नान के बाद मुलायम तौलिया तथा रुई से कानों में पहुँचे हुए जल की बूंद को सुखा देना चाहिये। कान को खुरचना हानिकारक है। कभी कभी कोई कीड़ा कान में चला

जावे तो जैतून का तेल गर्म कर कान में डाल देना चाहिये तथा कान को पिचकारी से धो देना चाहिये।

चक्षु—इनकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये। आंखों की दृष्टि स्थिर रहे इसलिये चाहिये कि:—

१—लेटे लेटे न पढ़ें।

२—ऐसे कामों से बचें जिन से आंखों की ज्योति कम होती है। जैसे—

३—प्रातःकाल मैथुन तथा मैथुन के बाद पढ़ना।

४—कम रोशनी में पढ़ना।

५—तीव्र प्रकाश आंखों के सामने रखना।

६—ऐसे छोटे अक्षरों की किताबें पढ़ना जिन के पढ़ने से आंखों पर जोर पड़े।

७—लगातार विना विश्राम हुए पढ़ना।

८—प्रत्येक व्यक्ति को नित्यप्रति ठंढे पानी से छपका देकर अपने नेत्र धोने चाहियें। किसी चौड़े पात्र में निर्मल जल भर कर आंखों को डुबा कर उसे कई बार खोलना मूंदना अर्थात् नेत्र-स्नान करना चाहिये। आंखों में बोरिक लोशन या महीन काजल लगाने से भी आंख की ज्योति स्थिर रहती है। याद रहे कि वीर्य के अधिक नष्ट होने से और सूखे गर्म पदार्थ खाने से आंखों की रोशनी कम हो जाती है। मोटा या दरदरा सुरमा लगाने से आंखों के कोमल तन्तुओं में आक्षेप उत्पन्न हो जाता है।

थकान

थकान उस अवस्था का नाम है जब शरीर की क्रिया अधिक उत्तेजक होने के बाद क्रिया-शीलन की कमी अनुमान करती है व चित्त की एकाग्रता न्यून हो जाती है। शिथिलता और काम करने

की इच्छा बिल्कुल नहीं रहती।

थकान के चिह्न

माथे में लकीर पैदा हो जाना। शोक मुद्रा। मांस पेशियां ढीली और आंखों के पलक भारी हो जाना।

जब यह चिह्न प्रकट होवें लगें तो हठात् परिश्रम नहीं करना चाहिये। ऐसी अवस्था में विश्राम की जरूरत पड़ती है। अधिक थकावट होने पर गर्म पानी से स्नान और तेल की मालिश से लाभ होता है। थकावट कम करने का एक उपाय यह भी है कि जिस काम से थकावट उत्पन्न हो उसको छोड़ कर कोई दूसरा हलका काम बदल ले। जैसे व्यायाम या कठोर परिश्रम के बाद टहलने से सुख प्राप्त होता है। श्रम करने के बाद समुचित विश्राम किये बिना स्वास्थ्य गिर जाता है। अधिक श्रम करने के पश्चात् निद्रा आ जाने से फिर नवीन जीवनी शक्ति का संचार हो जाता है। स्वास्थ्य ठीक करने के लिये शरीर और मन दोनों को ही विश्राम करने की आवश्यकता है। विश्राम करने से शरीर की मांस पेशियां, जो श्रम से शिथिल हो जाती हैं, फिर प्रफुल्लित हो सकती हैं। पूर्ण विश्राम निद्रा से मिलता है। निद्रा में संज्ञा-शून्य अवस्था प्राप्त हो जाती है। उस समय मन, बुद्धि और दिमाग को आराम मिलता है। जब मनुष्य सोता है तो हृदय और स्वास की क्रिया सुव्यवस्थित हो जाती है और मस्तिष्क और त्वचा में रक्त-संचालन सम हो जाता है। अर्थात् सम्पूर्ण अंगों को आराम मिलता है। पहले तीन घंटे के लगभग धीरे निद्रा रहती है और इसके बाद सुषुप्त अवस्था आ जाती है, इस समय अन्तस्थ क्रिया काम करने लगती है और फिर उठने के पहले एक बार गहरी निद्रा आती है। अच्छी नीन्द आने के लिये निम्न साधनों की आवश्यकता है:—

१—पवित्र वायु, २—नीरवता अथवा गुल गपाड़ा न होना चाहिये, ३—अंधकार. ४—सोने के नियमित समय निश्चित रखना, ५—दुख देने वाली सरदियों में ऊष्मा और गर्मी में शीतलता।

निद्रा कितनी होनी चाहिये इस विषय में विद्वानों का मतभेद है। परन्तु हम ने बहुत से मतों के विवाद को छोड़ कर माध्यमिक तालिका अपने पाठकों के लिये दी है। छोटे छोटे बच्चों को १६ घंटे सोना चाहिये, ४ से ८ वर्ष के बच्चों को १२ घंटे सोना चाहिये, ८ से १२ वर्ष तक के १० घंटे सोना चाहिये, १२ से १६ वर्ष तक के ८घंटे सोना चाहिये, १६ के उपरान्त जवान मनुष्यों को ६-७ घंटे सोना चाहिये, दुबले और कमजोर मनुष्यों को १०—११ घंटे सोना चाहिये।

ध्यान देने योग्य बात है कि अनिद्रता बड़ा भयानक रोग है और सोने के लिये नशीली दवा खाना, जो बहुधा डाक्टर देते हैं, और भी हानिकारक है। इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। निद्रा के साधारण उपाय यह हैं:—

१—सोने के पहले स्निग्ध (चिकना), हलका (कम) और उष्ण खाद्य लेकर पलंग पर जाय।

२—सोने से कम से कम आध घंटे पहिले सब काम बन्द कर भगवत्-स्मरण करे।

३—दिन में पवित्र वायु में थोड़ा व्यायाम करे जिससे रात्रिमें ठीक नींद आवे।

पंचम अध्याय

व्याख्यान कला

संसार में नवयुवकों को ऊंचा चढ़ाने तथा जीवन में सफल बनाने के लिये जो अनेक साधन प्रयोग में लाए जाते हैं उनमें व्याख्यान-कला का स्थान बहुत ऊंचा है। जितने महान् पुरुष और नेता हमारे देश में अथवा संसार में हुए हैं उनमें ऐसा कोई भी नहीं हुआ जिसे व्याख्यान देना न आता हो। अपनी भावनाओं को तथा विचारों को जनता के सम्मुख विना रक्खे कोई भी मनुष्य जनता को अपने पक्ष का नहीं बना सकता और जब तक जनता साथ में न हो कोई मनुष्य नेता नहीं बन सकता। अतः जो नवयुवक ऊंचे उठ कर देश का नेतृत्व करना चाहते है उन्हें इस कला में अवश्य निपुण होना चाहिये। क्या नैपोलियन वोनापार्ट, क्या सिकन्दर और क्या हिटलर, क्या महात्मा गांधी और क्या पंडित जवाहरलाल नेहरू, क्या कोई महान पुरुष संसार का ऐसा मिल सकता है जिसने अपने व्याख्यानों से जनता के भावों को जागृत न किया हो ? अमेरिका की स्वतन्त्रता का विजेता जनरल वाशिंगटन, इटली का संगटन कर्ता गैरी बाल्डी, जर्मनी का विधाता प्रिंस बिस्मार्क, रूस के सोवियट शासन का विधाता लेनिन, टर्की का राष्ट्र-पिता कमाल अतातुर्क, चीन के डाक्टर सनयातसेन और भारत के राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी इनमें से क्या कोई भी ऐसा हुआ जिसने अपने ओजस्वी भाषणों और वीरतामय व्याख्यानों के बिना देश की स्वतन्त्रता प्राप्त की हो ? कहाँ तक गिनायें यह नवयुवकों के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वे इस कला में दक्षता

प्राप्त करें।

बहुत से विद्यार्थी और नवयुवक ऐसे होते हैं जो दुनियाँ भर की गप्पें तो लड़ा सकते हैं, सैकड़ों किताबें भी पढ़ डालते हैं, लेख भी लिख सकते हैं। परन्तु यदि कहीं पाँच मिनिट भी बोलने के लिए खड़ा कर दिया जाय तो सभा-मंच पर पहुंचते ही उनकी टांगें कांपने लगती हैं, शरीर रोमांचित हो जाता है, आवाज़ भारी हो जाती है और वे ऐसे घबड़ा जाते हैं कि मानो किसी बड़ी मुसीबत में पड़ गये। ऐसी दशा में जो कुछ उन्हें कहना होता है वह कहना तो अलग रहा पहले की याद की हुई बातें भी वे भूल जाते हैं और पसीने में तर होकर हास्यास्पद बन कर बैठ जाते हैं, लेकिन क्या ऐसे नवयुवकों को निराश हो जाना चाहिये ? नहीं, कदापि नहीं। मार्कन, लाइड जौर्ज, डिज़रैली जैसे महान् वक्ताओं का उदाहरण अपने सामने रखना चाहिये जो अपने पहले दिन के भाषण में नितान्त असफल रहे थे लेकिन निरन्तर अभ्यास से वे संसार के महान् वक्ताओं में गिने गए। विलियम ब्रियन ने ठीक कहा है—"The ability to speak effectively is an acquirement rather than a gift." अर्थात् प्रभावशाली व्याख्यान शक्ति मानव द्वारा अर्जित की जाने वाली वस्तु है, नितान्त ईश्वर की ही देन नहीं। इसलिए नीचे जो जो साधन दिये जाते हैं उन पर निरन्तर अभ्यास करने से नवयुवक अच्छे वक्ता बन सकेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

वक्तृत्व शक्ति के साधन

(१) आत्मविश्वास:—व्याख्यान आरम्भ करने से पहिले अपने पर पूर्ण विश्वास रक्खो और पक्के इरादे के साथ अपने व्याख्यान को आरम्भ करो। यह समझ लो कि मैं अपने

व्याख्यान में पूरी तरह से सफल होऊंगा और कोई मनुष्य मेरी त्रुटियां नहीं पा सकेगा।

(२) **विषय की तैयारी**—जिस विषय पर तुम्हें बोलना हो उसकी पहिले से अच्छी तरह तैयारी करो। जहां से भी उस विषय के सम्बन्ध की कोई समीचीन उपयुक्त बात मिल सकती है उसको प्राप्त कर नोट करलो और फिर ऐसी सारी बातों को विषय के अनुसार क्रम-बद्ध करलो।

(३) व्याख्यान में बहुत अधिक बातों का समावेश न करें जो निश्चित समय में समाप्त नहीं हो सकतीं। निश्चित समय का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(४) लूथर बरबेंक की तरह सौ बातें एकत्रित करो तो उनमें से बढ़िया दस छांट लो जो जनता को अधिक रुचिकर और लाभकर हैं।

(५) व्याख्यान में मानव रुचि का ध्यान अधिक रक्खो और अपने सिद्धान्तों का मानव जीवन की घटनाओं और उदाहरणों से समर्थन करो।

(६) व्याख्यान आरम्भ करने से पूर्व अपने श्रोतागणों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अवश्य कर लो। उनकी रुचि और योग्यता का स्तर बिना जाने हुए जो व्याख्यान दिया जाता है वह सर्वदा असफल और अरुचि-पूर्ण रहता है।

(७) अपने व्याख्यान में कुछ ऐसी बातें अवश्य कहो जो अधिकतर श्रोताओं के लिये नवीन हों। शब्दावलि की अपेक्षा नवीन विचार, घटनाओं तथा अंक (Facts and figures) श्रोताओं को अधिक रुचिकर होते हैं। होरेस ने ठीक लिखा है:—

"Seek not for words, seek only for thought.

And crowding in will come the words unsought."

अर्थात् यदि तुम घटनाओं और विचारों को व्याख्यान में प्रमुखता से रक्खोगे तो शब्द तो अपने आप उनको प्रगट करने के लिये आते जायेंगे।

व्याख्यान में आकर्षण

यदि आप यह चाहते हैं कि आपका व्याख्यान आकर्षक हो और जनता उसको रुचिपूर्वक अन्त तक सुनती रहे तो निम्नलिखित बातों का ध्यान रखिये:—

(१) व्याख्यान से पूर्व ही श्रोता गणों की रुचि का पूर्णतया अध्ययन कर लीजिये। जिस विषय पर आप बोलने जा रहे हैं उसमें उनकी पूर्ण रुचि है अथवा नहीं?

(२) पूरे व्याख्यान में वक्ता में उत्साह का रहना अत्यन्त आवश्यक है। व्याख्यान की सफलता के लिए यह सबसे बड़ा साधन है। जैसा कि मिस्टर ब्रियन ने कहा है, "बिना उत्साह के ज्ञान निष्क्रिय और बेकार है।" यदि उत्साह, जोश और ओज व्याख्यान के प्रत्येक शब्द से नहीं टपकता तो मुर्दों की सी बातें करने से जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता और यदि वक्ता के शब्दों में ओज और जोश है तो वह चाहे किसी साधारण बात को ही क्यों न कहे, उसके मुख खोलते ही श्रोताओं में बिजली सी दौड़ जाती है और उसके प्रत्येक शब्द को श्रोता बड़े ध्यान से सुनते और प्रभावित होते हैं। कांग्रेस के आन्दोलन के समय में पं० जवाहरलाल नेहरू के उत्साहप्रद भाषणों को सुनकर श्रोताओं में स्वतन्त्रता की जो लहर उठती थी वह अतुलनीय थी। आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक कुं० सुखलालजी आर्य मुसाफिर के जोशीले भाषण जिन लोगों ने कभी सुने होंगे वे इस बात की पुष्टि करेंगे कि एक ओजस्वी व्या-

ख्याता के उत्साह भरे शब्दों का श्रोताओं पर कितना प्रभाव पड़ता है।

(३) व्याख्यान में कुछ उदाहरण और संख्याओं (Figures and Facts) का समावेश करने से श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। वे समझते हैं कि वक्ता ने अपने व्याख्यान को बहुत अच्छी तरह से तैयार किया है। यदि हम वैसे ही कहें कि भारत की आबादी बढ़ रही है और अन्न की समस्या कठिन हो रही है तो उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा और यदि हम यह कहें कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग ५० लाख आबादी बढ़ जाती है अथवा प्रति मिनट में ३८ नये बच्चे पैदा हो जाते हैं तो लोग इसको ध्यान से भी सुनेंगे और यह उनके मनोरंजन का भी साधन होगा।

(४) व्याख्यान के बीच में स्वर का चढ़ाव उतार अवश्य होना चाहिये। जो वक्ता आरम्भ से अन्त तक व्याख्यान में एक ही स्वर से बोलते जाते हैं उनका व्याख्यान श्रोताओं को थकाने वाला और अरुचिकर हो जाता है। जो वक्ता किसी महत्वपूर्ण शब्द पर जोर देकर, ऊंचे और मध्यम स्वर में यथास्थान धीरे और तीव्र बोलते हैं उनका प्रभाव अच्छा पड़ता है और उनका व्याख्यान जनता को रोचक प्रतीत होता है।

(५) व्याख्यान के बीच में यत्र तत्र वक्ता के स्वयं के अनुभव की अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क (Personal touch) की बात आ जाय तो उसको भी श्रोता बहुत ध्यान से सुनते हैं। शर्त यह है कि उसमें वक्ता का अभिमान या आत्मप्रशंसा (Self-praise) का वर्णन न हो। यदि वक्ता की आत्मप्रशंसा या अभिमान उसके व्याख्यान से प्रगट होगा तो व्याख्यान आकर्षक होने के स्थान पर उल्टा अरुचिकर हो जायेगा।

(६) व्याख्याता को अपने व्याख्यान में हमेशा कुछ ऐसी नई बातों का समावेश अवश्य करना चाहिए जिनसे श्रोताओं के ज्ञान में वृद्धि हो। व्याख्याता का आदर्श तो यह रहना चाहिये कि यदि उसके व्याख्यान में १००० श्रोता हों और वे एक घंटे तक बैठें तो उनके १००० घंटे के समय का उत्तरदायित्व वक्ता पर रहा इसलिए उसे अपने व्याख्यान की तैयारी में १००० घंटे तक लगाने चाहियें अथवा एक हज़ार नवीन बातें श्रोताओं तक पहुँचानी चाहियें। जो वक्ता इस आदर्श को अपने सामने रखकर चलते हैं वे धन्य हैं। वे ही जनता के और राष्ट्र के सच्चे हितैषी और आदरणीय हैं।

व्याख्यान की तैयारी

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कोई भी व्याख्यान दिया जाय तो उससे पूर्व उसके लिए अच्छी तरह तैयारी करनी चाहिये। स्पष्ट है कि जब सभा के प्रबन्धक इतने परिश्रम और सत्कार से वक्ता को बुलाते हैं और श्रोता अपना बहुमूल्य समय व्याख्यान सुनने में लगाते हैं तो ऐसे अवसर पर कुछ वक्ता का भी कर्त्तव्य हो जाता है। श्री देवनाथ उपाध्याय ने अपनी एक पुस्तक में भाषण की तैयारी के सम्बन्ध में कुछ सुन्दर विचार प्रकाशित किये हैं। वे लिखते हैं कि आप (वक्ता) को बैठने के लिए ऊंचा स्थान दिया जाता है, इसलिए नहीं कि वाग्जाल फैलाकर आप श्रोताओं से वाहवाही लूटें, वरन् इसलिए कि मंच से आप सुविधापूर्वक सर्व-साधारण को लाभ की बातें बतलावें। जरा सोचिये तो सही आप पर कितनी भारी जिम्मेदारी है। आप श्रोताओं को सन्तुष्ट कीजिए। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए अच्छा भाषण दीजिये, अच्छा भाषण देने के लिए अच्छी तैयारी कीजिए। उन्होंने आपके लिए बड़ी मेहनत की है। आपने उनके लिये कितनी मेहनत की है? सब कीं

मेहनत एक ओर, आपकी दूसरी ओर। दोनों बराबर होनी चाहियें तब तो आप अपने कर्त्तव्य का विधिवत् पालन कर रहे हैं, अन्यथा नहीं।

वक्ता को चाहिये कि जब उसे भाषण देने का निमन्त्रण मिले तो भाषण का विषय पूछ ले। कभी २ भाषण का विषय निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार वक्ता को ही रहता है, यह बड़ी अच्छी बात है। कितने समय तक बोलना होगा, श्रोता किस कोटि के और कितने आने वाले हैं, यह भी पहले से जान लेना लाभप्रद होगा।

यह और बात है कि आप किसी विषय पर दस पांच भाषण दे सकते हैं। फिर भी आप को जब उस विषय पर एक ही भाषण देना है तो आपको बड़ी मेहनत करनी है। आपको एक ढेर में से अच्छा माल चुनना है। सारे ढेर को कुरेद डालना होगा। विषय की काट छांट श्रोताओं की योग्यता देखकर करनी है। एक ही विषय को अपढ़ जनता के सम्मुख उपस्थित करने का ढंग एक है और उसी को सुशिक्षित जनता के सम्मुख उपस्थित करने का ढंग दूसरा। कल्पना कीजिए आपको 'जमींदारी उन्मूलन' पर भाषण देना है। किसानों की अपार भीड़ के सामने आप जिस शब्दावलि का प्रयोग करेंगे, जिस ढंग से विषय का प्रतिपादन करेंगे वह मुट्ठी भर जमींदारों की सभा में अपनाये गये ढंग से बिल्कुल भिन्न होगा। और यदि आपको ऐसी जगह बोलना पड़ा जहां जमींदार और किसान दोनों हैं, तो आपको एक तीसरा ही रास्ता अपनाना होगा। देश और काल का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा। आप हर घड़ी भैरवी नहीं गा सकते और न बारहों महीने फाग खेल सकते हैं।

यदि किसी एक ही विषय पर कई वक्ता बोलने वाले हैं तो आपका दायित्व और भी बढ़ जायेगा। यदि हो सके तो पहले से ही

पता लगा लीजिए कि क्या आपके अतिरिक्त और भी कुछ सज्जन बोलने आ रहे हैं। यदि हाँ, तो यह भी पता लगाइए कि बोलने वालों में आपका क्रम क्या रहेगा। यदि सबसे पहले बोलने उठें तब तो कुशल है। यदि आपका नम्बर बाद को आता है तो आपको अपना विषय हर पहलू से तैयार करना होगा। पूर्व वक्ताओं के कथन को छांटते हुये बोलना होगा। निराश होने की जरूरत नहीं, आपको फिर भी दौड़ लगाने के लिए बहुत बड़ा मैदान मिलेगा।

भाषण देना है, घण्टे आध घण्टे तक बोलना ही है। कैसे इतनी देर तक लगातार बोलें—यह प्रश्न प्रारम्भिक अवस्था में हर वक्ता को परेशान करता है। घबरा कर वक्ता सारे भाषण को तैयार करके लिखता है। फिर उसे रट जाता है सभा में आकर वह रटे रटाये भाषण को रख जाता है। एक ओर से शुरू किया, दूसरी ओर समाप्त हुआ। जैसा आया वैसा गया, श्रोता पर कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ा। भाषण याद करके बोलने में एक बड़ा भारी संकट है। अगर कहीं एक कड़ी भूल जाय तब तो वक्ता चारों खाने चित्त जा गिरेगा। यदि आप किसी मेले ठेले में भूल जाएँ तो कोई स्वयंसेवक पकड़ कर ठिकाने लगा देगा, लेकिन बोलते-बोलते भूल गये तो भगवान् ही आपका मालिक है। फिर भी बड़े से बड़े वक्ताओं ने पूरा भाषण रटकर सुनाने की कोशिश की है। डिसरैली, मैकाले और पिट तक ने ऐसा किया है।

भाषण को तैयार करने में एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वक्ता को मालूम होता रहता है कि उसे क्या २ कहना बाकी है। उसका आत्म-विश्वास बना रहता है। वह आसानी से बोलता है जैसे वह यात्री, जो रास्ता जानता है, आसानी से चलता है। उसे भूलने भटकने का डर नहीं रहता।

भाषण तैयार करने से दूसरा बड़ा लाभ यह है कि आप कम से कम प्रारम्भिक अवस्था में भाषण को रुचिकर ढंग से प्रारम्भ कर सकेंगे। आदि अच्छा तो अंत अच्छा। पहले जो संभल गया, संभल गया। जो लुढ़का वह न संभल पायेगा।

जो लोग भाषण तैयार करके आते हैं और श्रोता पर यह प्रभावित करना चाहते हैं कि वे बिना तैयारी के बोल रहे हैं, वैसे ही आ खड़े हुए, वे अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं। श्रोता को यदि पता चले कि वक्ता ने भाषण तैयार करने में बड़ा श्रम किया है तो वह बड़ा प्रसन्न होगा। वह कहेगा—भाषण में कुछ सार जरूर होगा। वह ध्यानपूर्वक सुनेगा। यदि वह जान जाय कि तैयार करने पर भी आप बनते हैं तो वह आपको झूठा कहेगा। उसकी हमदर्दी खो देने पर आपका भाषण कौड़ी का हो जायेगा।

भाषण चूंकि विचारों का ही प्रकाशन होता है, अतएव यह स्मरण रखना चाहिये कि भाषण कला और विचार शृङ्खला से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सुप्रसिद्ध विचारक इमर्सन ने तो यहां तक कहा है कि मुझे एक विचार दे दो, मेरे हाथ, पैर, मेरी वाणी और मेरी मुख मुद्रा बिलकुल ठीक काम करेगी।

भाषण की तैयारी क्या है ? एक वाक्य में उत्तर है—विचारों का संकलन। विचारों की कमी नहीं है। वे सोते-जागते, पढ़ते-लिखते, खाते-पीते सदा आते जाते रहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आप उन्हें पकड़ें और चुनकर रक्खें। आप को केवल अपना ध्यान केन्द्रीभूत करना होगा और एक उद्देश्य के निमित्त संलग्न होना पड़ेगा।

ड्वाइट एल० मूड़ी एक सुविख्यात धार्मिक उपदेशक हो चुका है। उसने लिखा है:—

जब मैं कोई विषय चुनता हूं, मैं एक बड़े लिफाफे पर विषय का नाम लिख देता हूँ। मेरे पास कई लिफाफे रहते हैं। यदि पढ़ते समय किसी ऐसे विषय पर, जिस पर मुझे भाषण देना है, कोई अच्छी बात मिलती है तो मैं उसे नोट करके सही लिफाफे में रखता हूँ। मैं उसे वहीं पड़ा रहने देता हूँ मैं हमेशा एक नोटबुक साथ में रखता हूँ प्रार्थना भवन में जब कोई ऐसी बात सुनता हूँ, जिससे किसी विषय पर प्रकाश पड़ता हो, तो मैं इसे भी नोट कर लेता हूँ और लिफाफे में रख लेता हूँ। कभी २ मैं उन्हें साल सवा साल तक रक्खे रखता हूँ। जब किसी विषय पर बोलना होता है तो मैं एकत्र सामग्री को खोलता हूँ उस सामग्री के साथ मैं निजी अध्ययन की बातों को जोड़ देता हूँ तो मुझे काफी सामग्री मिल जाती है।

अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट लिंकन को जब भाषण देना होता था तो वह उस पर हमेशा विचार करता रहता चाहे वह अपने काम में लगा हो, चाहे भोजन करता हो, चाहे गाय दुहता हो या हाट बाजार जा रहा हो। ध्यान उसका हमेशा अपने विषय पर रहता। कभी २ छोटे छोटे कागज के टुकड़ों पर नोट कर लिया करता। इन्हें वह अपने हैट में लगा लेता और जब शांतिपूर्वक बैठता तो उनको संभालता, दुहराता और लिख कर नोट तैयार करता।

जब वह प्रेसीडेण्ट हुआ तो उसे प्रारम्भिक भाषण देना था। भाषण कितना महत्वपूर्ण था। वह दो चार उपयुक्त पुस्तकों को लेकर एक छोटे से कमरे में बन्द हो गया जहां हवा का झोंका तक नहीं पहुँच सके। भाषण तैयार हो गया।

लिंकन का तरीका आप भी अपनावें। हफ्तों पहले से तैयारी शुरू कर दीजिए। सोते जागते, खाते, पीते, फिरते, पढ़ते, लिखते

यदि विषय में लीन आप भी रहें तो आप सफल हो सकते हैं।

अपने मित्रों से जब आप बातें करें तो घुमा-फिराकर वही विषय लाइये। अखबार पढ़ें और विषय से संलग्न कोई शीर्षक मिले तो उसे ध्यान से पढ़िये, अखबार का अवतरण देश काल के अनुरूप होगा, उसमें ताज़गी होगी।

विषय-संबंधी किसी भी जानकारी को हाथ से न खोइये, उसे चट नोट कर लीजिये। स्मरण-शक्ति पर विश्वास करना ठीक नहीं। जितनी बातें आप पढ़ते हैं उनमें से आधी तो उस दिन भूल जाती हैं।

आजकल प्राय: हर विषय पर पुस्तकें मिल सकती हैं। पहले आप स्वयं विषय की अच्छी तरह छान बीन कर लें। फिर पुस्तकालय की शरण लीजिये। आप देखेंगे कि कोई न कोई पुस्तक आप की आवश्यकता के अनुरूप मिल ही जाती है। नोट तैयार कीजिये, मनन कीजिये, तब मित्रों से परामर्श कीजिये, गुरुजनों से मिलिये। कुछ लोग ऐसा करने में भी संकोच करते हैं। वे सोचते हैं पूछने पर लोग मजाक उड़ायेंगे। कहेंगे—चले हैं लेक्चर देने। अपने लेक्चर के पीछे मरे जा रहे हैं। ठीक है, यदि आप अपने लेक्चर के पीछे मरे जा रहे हैं तो आपका लेक्चर सजीव होगा अन्यथा नहीं।

भाषण के अंतर्गत कुछ विशेषज्ञों की सम्मति—उन्हीं के शब्दों में—और कुछ आंकड़े देने से प्रभाव अच्छा पड़ता है। इन्हें बहुत दक्षतापूर्वक एकत्र करना चाहिए। यदि छोटे हों तो याद कर लें और बड़े हों तो नोट कर लेना चाहिए।

आप पूछ सकते हैं कितनी तैयारी पर्याप्त कही जाय। इसका उत्तर है आप जितनी तैयारी करें अपर्याप्त है। लेकिन इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। यदि आप को १० मिनट का भाषण

देना है तो ३०, ४० मिनट का तैयार करके जाइये। आप को दो रुपये का सौदा लेना हो तो बाजार में १० रुपये लेकर जाइये। कौन जाने भाव बढ़ गया हो या कौन जाने नई चीज़ मिल जाय जिसे ख़रीदना आप उपयोगी समझते हों? आप के पास जितना ही अधिक रुपया रहेगा आपकी हिम्मत उतनी ही बढ़ी रहेगी, भले ही सब रुपये की आपको तत्काल ज़रूरत न हो। उसी तरह आप अगर ज़रूरत से तीन-चार गुना अधिक तैयार रहेंगे तो आत्मविश्वास बना रहेगा।

ज़रूरत से अधिक तैयार होना इसलिये भी अनिवार्य है कि वक्ता ने घर पर सभा के विषय में जो धारणा बनाई है सभा उससे बिलकुल भिन्न हो। इतना ही नहीं, वक्ता बोलने उठा, फिर भी कई बातें ऐसी उपस्थित हो सकती हैं जो वक्ता को भाषण का तारतम्य बदलने को बाध्य करें। सभापति के कान में किसी ने कुछ कह दिया, एक कागज दे दिया जिसके अनुसार वक्ता को कतिपय बातों के कहने से रोक दिया गया। श्रोताओं की मुखमुद्रा से ऐसा लगे कि वे वक्ता से सहानुभूति रखते हुए भी उसकी बातों को सुनने को तैयार नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वक्ता को अपना मार्ग बदलकर संचित सामग्री का उपयोग करना ही होगा। यदि वक्ता हर प्रकार से तैयार होकर आया है तो कैसी भी परिस्थिति क्यों न उत्पन्न हो किसी न किसी रास्ते से वह आगे बढ़ सकेगा और अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेगा।

भाषण जिस दिन देना हो उस दिन तो वक्ता को वैसे ही सतर्क रहना चाहिए जैसे परीक्षार्थी परीक्षा के दिन रहता है। अपने सारे नोट देख लीजिये, एक बार, दो बार, तीन बार। सभा में जाने से पहले एक बार और देख लीजिये और जांच कर लीजिये कि आप को हर एक संकेत अच्छी तरह याद तो है न?

भाषण देने के पहिले आप जितना ही शांत रहें उतना ही अच्छा। यदि दौड़कर झपटकर आप श्रोताओं को बैठाने लगे, कुर्सियां लगाने लगे, फर्श बिछाने लगे और इसी सरगर्मी में उठकर बोलने भी लगे तो आप अपने कर्त्तव्य का निर्वाह न कर पायेंगे। आपका चित्त एकाग्र होना चाहिए मानो आप पूजा पर जा रहे हों।

आप कहेंगे विषय को तैयार करने की ये विधियां बड़ी जटिल हैं, किसको इतनी लगन है और किसको इतना समय है कि भाषण तैयार करे। आप यह भी कहेंगे महात्मा गांधी प्रतिदिन दो एक लेक्चर दिया करते थे। पं० जवाहरलाल नेहरू एक से एक अच्छा लेक्चर देते हैं, क्या वे तैयार करते हैं। वे तो रास्ता चलते लेक्चर देने लगते हैं। हां, यदि आप सफल वक्ता बनने की आकांक्षा रखते हों तो आपको इतने विकट मार्ग पर चलने के लिये तैयार रहना होगा। रह गई महात्माजी की और पं० नेहरू की बात; सो उनकी बात दूसरी है, वे हमसे बहुत आगे हैं।

भाषण तो जैसे-तैसे तैयार कर लिया, अब उसे कैसे याद रक्खें ? पूरे भाषण का रटना ठीक नहीं। अपने भाषण को कई भागों में बांटिये—उसका विवेचन कीजिये। एक एक संकेत हर भाग का बना लीजिये। संकेत अति सूक्ष्म हो किंतु साथ ही इतना व्यापक हो कि उसमें एक भाग के अंतर्गत प्रस्तुत सामग्री आ जाय।

इन संकेतों को याद कर लीजिये और उनको एक क्रम से रट लीजिये। यदि क्रम टूटा तो सारी इमारत ढह जायेगी।

संकेतों को नोट कर लेना और नोट की सहायता से बोलने को मैं बुरा नहीं मानता। श्रोता भी ध्यानपूर्वक सुनेंगे। वे समझेंगे आपने विषय को तैयार करने में बड़ी मेहनत की है, आपके प्रति

उन्हें श्रद्धा होगी। नोट की सहायता से बोलने में आपको आसानी रहेगी। एक के बाद दूसरा संकेत और दूसरे के बाद तीसरा आता जायेगा। भाषण क्रम-बद्ध चलेगा। श्रोताओं को आपका भाषण सुनने और समझने में आसानी रहेगी।

संकेत संकेत की तरह हों। पूरे वाक्य न लिखे हों। जिस समय आप बोलते हैं आपका ध्यान कई ओर रहता है। ऐसे वक्त नोट आसानी से नहीं पढ़ाई देता, ऐसा आपका अनुभव होगा। पूरा वाक्य पढ़ने के लोभ में आपको मिनट आधा मिनट रुकना पड़ जायेगा।

जिसे मंच पर आने का शौक हो, जो अच्छा वक्ता बनना चाहता हो उसके लिये ज़रूरी है कि अच्छी स्मरण-शक्ति रक्खे। कुछ लोग जन्म से अच्छी स्मरण-शक्ति वाले होते हैं, लेकिन जो ऐसे नहीं हैं वे अभ्यास करने से अच्छी स्मरण-शक्ति वाले बन सकते हैं। साधारण मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति का प्रायः ९० प्रतिशत बर्बाद करता है। यदि वह उसकी रक्षा करे तो कमाल हो जाय। ("भाषण संभाषण से")

व्याख्यान के समय

जब वक्ता अपने व्याख्यान की पूरी तैयारी कर चुके तब उसको व्याख्यान या भाषण के समय क्या करना चाहिये? उसके लिए कुछ आदेश नीचे दिये जाते हैं:—

(१) जब वक्ता भाषण को देने के लिये मंच पर खड़ा हो तो उसे दोनों पैरों पर बराबर जोर देकर दृढ़ता के साथ सीधा खड़ा होना चाहिये। उसके खड़े होने के ढंग से यह प्रगट न हो कि वह झेंपता है या जनता से घबड़ाता है।

(२) वक्ता को अपने श्रोताओं के सामने आँख मिलाना

चाहिये। श्रोताओं की आँखों के तेज का सामना करना वैसे तो साधारण मनुष्य का काम नहीं है लेकिन अभ्यास से यह सम्भव है।

(३) व्याख्यान के समय हाथों को कहाँ रक्खा जाय यह भी बड़ी समस्या है। कोई हाथ से मेज पीटते हैं, कोई अपना बटन टटोलते हैं, कोई जेबों में हाथ डाल लेते हैं, कोई अपने बालों पर हाथ फेरते रहते हैं, ये सब आदतें खराब हैं। व्याख्यान के विषय के चढ़ाव उतार के साथ यदि हाथों का उचित उपयोग किया जाय तो व्याख्यान बड़ा प्रभावशाली हो जाता है। हाथ के इशारे से कथन का समर्थन होता जाता है और श्रोता का ध्यान वक्ता की ओर खिंचा रहता है। आवश्यकता से अधिक हाथ हिलाना भी हास्यास्पद हो जाता है।

(४) वक्ता का पहनावा व्याख्यान के समय ऐसा न हो जिससे लोग उसे देखकर हँसें या उससे घृणा करें। उसकी पोशाक साफ, शुद्ध, स्वदेशी और सादा होनी चाहिये, न तो गंदी हो और न ऊटपटाँग और न अधिक फेशनेबल। सर पर बड़े बड़े बाल रखना, उन पर हाथ फेरना या उन्हें फड़फड़ाना वक्ता के लड़कपन का द्योतक है।

(५) व्याख्यान में वक्ता की आवाज का विशेष स्थान है। मीठी आवाज वाले वक्ता का व्याख्यान आकर्षक होता है और फटी हुई आवाज को कोई सुनना भी नहीं चाहता। बोलते समय गले पर अधिक जोर नहीं देना चाहिये। श्रोताओं की संख्या के अनुसार आवाज को ऊँचा और तेज करना चाहिये और व्याख्यान के प्रत्येक शब्द को साफ साफ उच्चारण करना चाहिये।

(६) भाषण करते समय अपने विषय को छोड़कर इधर उधर

नहीं जाना चाहिये। अपने विषय में वक्ता की जितनी निष्ठता और प्रेम होगा उतना ही भाषण प्रभावशाली होगा। जो शब्द वक्ता के हृदय से निकलते हैं वे शब्द श्रोताओं के हृदय तक पहुँचकर प्रभाव डालते हैं जैसे महात्मा गाँधीजी जब बोलते थे तब उनकी शब्दावलि कुछ ललित नहीं होती थी, न बातें ही बहुत ऊँची होती थीं लेकिन जिन साधारण बातों को वे कहते थे वे उनके हृदय से निकली हुई होती थीं, इसलिये श्रोताओं के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती थीं।

(७) भाषण में मनोविनोद का स्थान प्रमुख है। वक्ता को संयत भाषा में सभ्य और शिष्ट हास्य की बात कहना शोभा देता है और श्रोताओं का मनोरंजन करता है। केवल लोगों को हँसाने के लिये विषय से असम्बद्ध ऊटपटांग चुटकुला सुना देना व्याख्यान-कला से अनभिज्ञता सूचित करता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये। व्याख्याता किसी भाँड या जोकर का पार्ट अदा करने के लिये मंच पर नहीं बुलाया जाता। उसे यह ध्यान रखना चाहिये कि श्रोतागण उससे कुछ नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं। वह नवीन ज्ञान उनके सामने मनोरंजक ढंग से रखना आवश्यक है क्योंकि सूखी व्याख्यानबाजी से श्रोताओं के मन ऊब जाते हैं और वे धीरे धीरे सभा-भवन में से खिसकना आरम्भ कर देते हैं।

(८) भाषण को समाप्त करते हुये अन्त में उसका सारांश दोहरा देना चाहिये अथवा किसी उद्देश्य के लिये श्रोताओं से अपील करनी चाहिये।

वक्ता की भूलें

व्याख्यान के समय अनेक वक्तागण कुछ ऐसी भूलें कर जाते

हैं जिनसे उनका अच्छा व्याख्यान भी खराब हो जाता है और उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इस विषय में श्री पं० देवनाथजी उपाध्याय एम० ए० ने वक्ता की भूलों का दिग्दर्शन बड़े अच्छे ढंग से कराया है उनमें से कुछ विशेष बातें यहां दी जाती हैं:—

(१) कुछ देर करके आना। सभा में जाते हैं लेकिन देर करके। अब तक हमारी समझ में नहीं आया इसमें क्या रहस्य है।

एक और बड़े मजे की बात देखी है। जो वक्ता दूर से आने वाला होता है, हवाईजहाज, ट्रेन अथवा बस से आने वाला होता है, वह तो समय से आ जाता है लेकिन जो वक्ता नजदीक से आने वाला होता है वही देर करता है। वक्ता की प्रतीक्षा में हजारों आदमी सभास्थान पर उपस्थित रहते हैं, उनका समय बहुत बर्बाद होता है। साथ ही वक्ता के विषय में श्रोताओं का विचार खराब हो जाता है। वे कहते हैं बड़ा ढीला आदमी है, समय का मूल्य नहीं जानता। वक्ता कितनी ही माफी मांगे वह श्रोता के हृदय से यह भाव निकाल नहीं सकता।

(२) सभा में श्रोताओं से क्षमा-याचना मत कीजिए। यदि आप देर करके आये हों तो अच्छा है कि सभापति से अथवा संयोजक से क्षमा मांग लें। वे आपकी ओर से श्रोताओं के समक्ष दुःख प्रकट करके सभा की कार्यवाही प्रारम्भ कर देंगे। बहुतेरे वक्ता यों भी बातचीत में माफी मांगते चलते हैं उठते ही कहेंगे—"मैं आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। मैं कोई पढ़ा लिखा आदमी नहीं हूँ और न मेरा कोई अनुभव है। मुझसे बहुत-सी भूलें हो सकती हैं। आपकी इस विद्वन्मंडली में भाषण देने की योग्यता नहीं रखता। जो भूलें हों आप लोग कृपा करके उन्हें क्षमा करेंगे।" भाषण के बीच में माफी मांगते हैं, कसमें खाते

हैं और अन्त में फिर कहते हैं—मेरे भाषण में बहुत-सी गलतियां, बहुत-सी भूलें हुईं आप कृपाकर क्षमा करेंगे। मैंने जो कुछ कहा है इसमें जो कुछ अच्छा जान पड़े आप उसे मानें बाकी सब छोड़ दें। वास्तव में इतना झुकने की कोई आवश्यकता नहीं। आप कुछ संदेश देने के लिए आए हैं, संदेश दीजिए और बैठ जाइये। आपको अपने संदेश में पूरा विश्वास है। माफियां मांगने और कसमें खाने से आप अपने को अकारण हल्का कर रहे हैं।

(३) संदेहात्मक शब्दों को न कहिये। जिस कथन को वक्ता निश्चित रूप से सत्य जानता है उसके कहने में भी वक्ता कुछ न कुछ संदेह की मात्रा घुसा देता है। घड़ी आपके हाथ में है ३ बज कर २७ मिनट हुए हैं। सीधे साढ़े तीन कह देना अधिक प्रभावकारी होगा। अथवा कहिये ३ बजकर २७ मिनट है। करीब २ साढ़े तीन कहने से श्रोता को एक तो आपकी घड़ी पर इतमीनान न होगा दूसरे वह समझेगा ३ बजकर ४० मिनट और ३ बजकर २० मिनट के बीच कोई समय है।

(४) कुछ लोगों को ऐसी आदत होती है किसी खास शब्द को अकारण बार २ दुहराने की। 'तो' को बार २ कहने की आदत प्रायः २५ प्रतिशत वक्ताओं को है। हर दूसरे तीसरे वाक्य में एक बार 'तो' डाल दिया। महात्मा गांधी भी अपने भाषणों में 'तो' का अधिक प्रयोग करते थे। ऐसे तकिया कलाम रखने वालों को बाधक और भी परेशान करते हैं।

बहुतेरे शब्द तकिया कलाम के रूप में बाजार में चल गये हैं। जैसे गोया, अगरचे, जो है सो आदि। तकिया कलाम वाले अपनी कमजोरी नहीं जानते। उनके मित्र और पड़ोसी जानते हैं।

तकिया कलाम रखने वाले अगर मंच पर आकर कुछ कर दिखाना चाहते हैं तो वे कृपाकर अपना तकिया कलाम घर रखकर

आवें। तकिया कलाम छोड़ने की एक साधारण विधि है। आप अपने किसी मित्र से पूछिए क्या आपका कोई तकिया कलाम है। मित्र आप से कुछ समय तक बहुत बातचीत करके बता सकेगा। फिर आप अपनी मित्र-मंडली में घोषणा कर दीजिए कि मित्र आपको हर तकिया कलाम पर रोक दिया करें। हफ्ते दो हफ्ते में आपका रोग छूट जायेगा।

(५) सभा के किसी एक व्यक्ति अथवा एक अंग का मज़ाक न उड़ाइये। किसी के प्रति यदि आपने कहा—आप खूब हैं! भगवान् ने आपको भी बहुत सुन्दर बनाया है, तो यह बात सबको बुरी लगेगी। इस प्रकार किसी वर्ग विशेष के लिए ऐसी शब्दावलि का प्रयोग वर्जित है।

(६) श्रोता के सामने आने पर आप बहुत ज्यादा संकोच न दिखलावें। बहुत से वक्ता अपना पूरा परिचय देने में भी संकोच करते हैं। यह ठीक नहीं, श्रोता अच्छी तरह जान लेना चाहता है कि वक्ता है कौन, उसकी योग्यता क्या है और उसका अनुभव क्या है। वक्ता को चाहिये कि अपना पूरा नाम, अपनी योग्यता और प्रस्तुत विषय के संपादन करने की क्षमता एक कागज पर लिखकर सभापति को दे दे। बात यह है कि सभापति भी बहुधा वक्ताओं के विषय में अधिक नहीं जानते और वे संकोच के मारे वक्ताओं का परिचय पूछते भी नहीं। जैसे-तैसे काम निकालना चाहते हैं। सभापतिजी ने यदि आपकी प्रशंसा आवश्यकता से अधिक करदी तो कृपाकर आप उनके कथन को गलत न काटें। यदि वैसे ही कोई निराधार बात कह दी है तो भाषण के दौरान में लगे हाथ कह दीजिए। सभापति आपको विद्वान् और बुद्धिमान् कहेगा। आप यह न कहें कि आप निरक्षर हैं और मूर्ख हैं। आप

समझते होंगे कि आप शिष्टता का निर्वाहन कर रहे हैं, उधर श्रोता आप को सचमुच निरक्षर और मूर्ख समझ रहे हैं।

(७) भाषण के बीच आप बनने की कोशिश न करें। आप बड़े विद्वान् हों, लेकिन खुलकर न कहिए कि आप अमुक कक्षा पास हैं। आप बड़े धनवान हों लेकिन खुलकर न कहिए कि आप के पास इतने लाख रुपये हैं। यदि ऐसा आभास देने की आवश्यकता ही पड़े तो घुमा फिरा कर कहिए। आप यदि एम० ए० तक पढ़ चुके हैं तो यह न कहिए कि एम० ए० तक पढ़ चुका हूं इसलिए हम को इस विषय का अधिकार है। नहीं, घुमा फिरा कर कहिए हम लोग जब एम० ए० क्लास में पढ़ रहे थे तो हमारे प्रोफ़ेसर ने ऐसा कहा। उस बात का पहले से प्रसंग लाइये।

(८) भाषण देते समय स्कूलमास्टर की तरह बच्चों को सम्बोधित न कीजिए। सार्वजनिक सभा में आजकल प्रौढ़ों से अधिक संख्या में बच्चे आने लगे हैं। बच्चों का भी प्रौढ़ों की तरह सम्मान कीजिए, किन्तु साथ ही उनके मन लायक बातें भी कहिए। सभा में यदि महिलायें हों तो उनके आत्म-सम्मान का विशेष ध्यान रखिये। अपने भाषण में केवल पुरुषों के ही लाभ की बातें न कहिए, महिलाओं के लिए उपयोगी बातें भी रखिये।

(९) आपके पहले यदि कुछ वक्ता बोल गये हों तो आप अपनी तुलना उनसे न करें। यदि कोई ऐसा वक्ता बोल चुका जिस के भाव, भाषा और शैली से लोग बहुत प्रभावित हुए हैं और आप अच्छी तरह समझते हैं कि आप उसकी बराबरी नहीं कर सकेंगे, फिर भी आप हार न मान जाइए और न श्रोता से यही कहिए कि आप अमुक अमुक वक्ता के सामने अतितुच्छ हैं, न तो आप उसकी शैली की नकल ही कीजिए। आप आत्म-विश्वास

रखिए, स्वावलम्बी बनिये और अपने मार्ग पर पूर्व निश्चित योजना के अनुसार चलिए। ठीक है, श्रोता पहले आए वक्ता से बहुत प्रभावित हुए थे, आपके भाव, भाषा और शैली से उनका स्वाद कुछ बदल जायेगा।

(१०) अक्सर मंच पर ऐसे वक्ता आते हैं जो अपना भाषण इस प्रकार प्रारंभ करते हैं—

बहुतेरे सुयोग्य वक्ताओं ने इस विषय के हर पहलू पर काफी प्रकाश डाला है। मेरे कहने के लिए अब कोई चीज़ रह नहीं जाती है। मैं क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता फिर भी सभापतिजी की आज्ञा है कैसे टाल सकता हूँ। यों तो मैं बोलने को तैयार नहीं था। फिर भी अब तो बोलना ही पड़ेगा, आदि। पाँच मिनट तक इस प्रकार आनाकानी और नाज़-नखरा कर लेने के बाद भाषण प्रारंभ करते हैं और घण्टे आध घण्टे तक बोल जाते हैं। कुछ वे अपनी बात कहेंगे, कुछ दूसरों की सुनकर कहेंगे। हो सकता है कि आप इस तरह कुछ समय काट ले जायं लेकिन जब आप दूसरों का हवाला देते हैं, श्रोता समझ जाता है आप दिवालिया हो चुके हैं। इस प्रकार अपने दिवालियापन का नंगा नाच न दिखाइये। आपके पहले यदि बीसों आदमी बोल चुके हों तो भी आपको बोलने के लिए पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। यदि नहीं मिलती तो आप घण्टे आध घण्टे तक बोल कहाँ से गये। सचमुच यदि कोई नई बात कहने की नहीं है तो कृपा कर न बोलिये, आप श्रोता का बड़ा उपकार करेंगे।

षष्ठ अध्याय

जीवन में विजय

निद्रा पर विजय

ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक होगी जिनकी नींद हलकी से हलकी आवाज़ से भी खुल जाया करती है। खिड़की की खड़खड़ाहट, रास्ता चलने वालों के पैर की आहट, घड़ी बजने की आवाज़—ये सभी चीजें उनकी नींद के झीने परदे के—जो उनको हलके तौर से ढके रहती है—अंदर घुस जाती हैं; वे चौंक कर उठ बैठते हैं और नींद घंटों के लिए बिदा हो जाती है।

निद्रा का प्रयोजन

स्वास्थ्य-संबंधी जितनी भी समस्याएं मनुष्य को परेशान किया करती हैं उनमें अनिद्रा की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्या कारण है कि हजारों व्यक्ति सोये देख पड़ते हुए भी वस्तुतः अर्द्धजाग्रत अवस्था में रहते हैं? क्या कारण है कि इतने अधिक व्यक्तियों को प्रातःकाल बिस्तर से उठने पर सोने जाने के समय से अधिक थकावट जान पड़ती है? कहीं-न-कहीं जरूर कोई खराबी है। निद्रा का मतलब शरीर को नष्ट हुई जीवनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने, निःसत्त्व जीववस्तु का पुनर्निर्माण करने और दिन के काम के लिए पुनः ताजा, सशक्त बनने का अवसर प्रदान करना है। निद्रा एक प्रकार का विराम या अवकाश है जिसमें शरीर की थकावट दूर हो जाती है, नाड़ी-संस्थान अनवरत जागरण के भार से मुक्त हो जाता है, मस्तिष्क को शरीर पर नियंत्रण रखने के कार्य से फ़ुरसत मिल जाती है और शरीर जीवन के छोटे मोटे झंझटों

से अलग हो जाता है। हलकी नींद या अर्द्धजाग्रत अवस्था में सोने वाले व्यक्ति प्रकृति के क्षय-पूर्ति-संबंधी इस कार्य से कैसे लाभ उठा सकते हैं ?

परस्पर विरोधी बातें

अनिद्रा के उपचार के लिए जो उपाय सुझाए जाते हैं वे परस्पर-विरोधी तो हैं ही, उलझन में डालने वाले भी हैं—यथा,

क. सोने के ठीक पहले पेट भर नहीं खाना चाहिए।

क. सोने के पहले अच्छी तरह खा लेना चाहिए; जानवर खाने के बाद ही सोया करते हैं।

ख. रात में देर तक कठिन श्रम नहीं करना चाहिए।

ख. दूर तक टहलने निकल जाइए और सोने के पहले बदन को खूब थका लीजिए।

ग. बिस्तर पर लेट कर मत पढ़िये।

ग. नींद न मालूम होने तक लेटे-लेटे हलकी चीजें पढ़ते रहिये।

घ. कमरे में रोशनी न रक्खा करें।

घ. अगर अंधेरे में नींद न आती हो तो रोशनी जलाए रक्खें।

स्पष्ट ही ये परस्पर विरोधी बातें सही नहीं हो सकतीं। दर-असल यह मुख्य प्रश्न को टालने का उपाय है। अब वास्तविक स्थिति पर विचार कीजिए।

वास्तविक निद्रा

वे लोग कौन हैं जो गाढ़ी नींद सोया करते हैं ? जरा मिट्टी खोदने वाले या इस तरह के किसी मजदूर की झोंपड़ी के अंदर नजर डालिये और देखिये कि वह पटरे या किसी कड़े बिस्तर पर किस प्रकार पूरा बदन फैलाकर अंगों को ढीला किये सो रहा है। समान रूप से चलती हुई उसकी गहरी साँस पर भी

जरा ध्यान दीजिए। उसके हाथ को उठाकर छोड़ दीजिए तो वह इस प्रकार गिर पड़ेगा जैसे बिलकुल निर्जीव हो; वस्तुतः निद्रा ऐसी ही होनी चाहिए। मजदूरों तथा मेहनत करने वाले जानवरों के सामने निद्रा की समस्या नहीं पैदा होती। निद्रा बिना बुलाये दौड़ी आती है और शरीर को पूर्ण विश्राम और नवजीवन प्रदान कर चली जाती है।

अंगों का नियंत्रण

अब प्रश्न यह है कि वास्तविक निद्रा से होने वाले लाभ प्राप्त करने के लिए हम क्या करें? जो लोग मस्तिष्क का काम करते हैं या ऐसा काम करते हैं जिससे शरीर में थकावट नहीं आती उनके लिए पहला आवश्यक कार्य उचित व्यायाम है। उन्हें घर के कामों—टैनिस आदि खेलों या अन्य प्रकार के व्यायामों—के रूप में आवश्यक शारीरिक श्रम करना चाहिए। प्रकृति तो उदारता पूर्वक इसका प्रतिफल देगी ही, ऊपर से लाभ यह होगा कि अंगों पर नियंत्रण प्राप्त हो जायगा।

इस नियंत्रण में ही प्रगाढ़ निद्रा का रहस्य छिपा हुआ है। जो व्यक्ति व्यायाम के द्वारा स्वास्थ्य बनाना चाहते हैं वे भी इस महत्वपूर्ण विषय की उपेक्षा कर जा सकते हैं। व्यायाम का उद्देश्य कठिन शारीरिक कार्य ही करना नहीं है। यह सत्य है कि ये काम व्यायाम के ही द्वारा संभव होते हैं, पर वे तभी होते हैं जब अंगों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। बहुत से लोग व्यायाम के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को बहुत जल्द भूल जाते हैं।

हम में से बहुतेरे भारी वजन उठाने या दूर की दौड़ लगाने के लिए अपनी पेशियों का संकुचन कर सकते हैं, पर ऐसे कितने लोग होंगे जो उन्हीं पेशियों को इच्छानुसार ढीला भी कर सकते हों?

शल्योपचार द्वारा रोगों से मुक्ति मिलने की बात पर विश्वास न होते हुए भी हम क्लोरोफार्म देकर बेहोश करने वाले से एक शिक्षा तो प्राप्त कर ही सकते हैं। वह आपको बतलायेगा कि शल्यक्रिया उसी रोगी पर सुचारुरूप से होती है जो सारा भय दूर कर अपने को सर्जन के हाथ में सौंप देता है, अपनी ताकत नहीं लगाता और कोई झंझट नहीं पैदा करता। ऐसा रोगी पूर्ण रूप में बेहोश हो जाता है और उसकी सारी नाड़ियाँ और पेशियाँ तनाव खोकर बिलकुल ढीली पड़ जाती हैं जिससे सर्जन को रुग्ण भाग पर अपना कार्य करने में बड़ी सहूलियत होती है। स्मरण रखिये कि तनाव दूर किये बिना विश्राम भी नहीं प्राप्त हो सकता।

स्थिति भिन्न होते हुए भी निद्रा के संबंध में यही बात लागू होती है। कृत्रिम ढीलापन लाने के लिए बेहोश करने वाला व्यक्ति आपके पास नहीं होगा, शरीर का नियंत्रण ही आपके हाथ में क्लोरोफार्म के रूप में होगा। आरंभ में यह कार्य कुछ कठिन जान पड़ सकता है, पर कुछ ही दिनों के अभ्यास द्वारा यह नियंत्रण प्राप्त हो जाता है।

अंगों को ढीला कीजिए

बिस्तर पर पीठ के बल, भरसक अंधेरे में लेट जाइये। दो-तीन मिनट सुगमता और नियम-पूर्वक सांस लीजिए और फिर एक-एक अंग को ढीला करते जाइये। उदाहरणार्थ दाहिने हाथ से यह क्रिया आरंभ कीजिये। यह निश्चय कर लीजिए कि वह पूरा ढीला हो गया है। एक मिनट इसे ध्यान में रखिये और फिर उसे उसी अवस्था में रहने देकर बायें हाथ की ओर ध्यान ले जाइये और उस पर भी वही क्रिया कीजिए। फिर पैरों के साथ भी वही कीजिये और खयाल रखिये कि श्वास की क्रिया ठीक वैसी ही रहे। अगर आप में मानसिक या नाड़ी-संबंधी दौर्बल्य है, स्वभाव

उत्तेजनशील है तो आप देखेंगे कि जबतक आप बायें पैर की क्रिया पर पहुँचेंगे तबतक आपके हाथों में फिर तनाव आ चुका है। उन्हें फिर ढीला कीजिये और इस स्थिति में उन्हें कम-से-कम दस मिनट रखिये। इस समय में आपको पता चल जायेगा कि बाद में आप की इच्छाशक्ति के प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

अगर दस मिनट बीतते-बीतते आपको नींद आने लगे तो उसे जोर पकड़ने दीजिए। इसके अनन्तर आपकी चेतना फ़ौरन गायब हो जायगी। इसका प्रयोग करने वाले कभी पूरा समय नहीं बिता पाये हैं, पहले ही निद्राभिभूत हो गये हैं। अनिद्रा के पुराने रोगियों को कुछ दिनों लगातार अभ्यास करने पर ही सफलता मिल सकती है। इस प्रयोग को करते जाने पर आप देखेंगे कि विश्राम के समय आपकी चेतना में ढीलापन आने लगेगा जो विश्राम के लिए बहुत आवश्यक है। इस अभ्यास द्वारा अंगों पर ही नहीं, चेहरे की पेशियों पर भी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। नाड़ीसंस्थान बहुत सक्रिय होता है और अपनी जागरूकता छोड़ने को जल्द तैयार नहीं होता। इसलिए इस कला का अच्छा अभ्यास न होने पर किसी-न-किसी अंग में तनाव बना ही रहेगा।

लेटने की मुद्रा

बायें घुटनों को जरा मोड़ कर दाहिने पार्श्व के बल लेट जाइये, बायाँ हाथ ढीला करके बाईं ओर रक्खें और दाहिना हाथ ढीला रखते हुए मोड़कर सीने पर रहने दें। शरीर कुछ झुका रहे जिसमें दृष्टि पैरों की ओर हो। इस मुद्रा में लेटकर आप आसानी से अपना बदन ढीला कर सकते हैं। इस अभ्यासकाल में श्वासक्रिया पूर्ववत् चलती रहे। नाड़ियों में स्थिरता लाने और काम

से चूर मस्तिष्क को शांत करने में इससे बड़ी मदद मिलती है।

अनिद्रा पर विजय प्राप्त हो जाने पर नियंत्रण-संबंधी यह अभ्यास यह समझकर छोड़ मत दीजिये कि अब प्रयोजन सिद्ध हो गया, इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। जब आपको यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाय कि इच्छा शक्ति का कार्य शरीर का संचालन ही नहीं, उसे विश्राम के लिए बाध्य करना भी है, तो समझ लीजिए कि आपको स्वास्थ्य का मूलमंत्र मालूम हो गया।

अगर आपका काम ज्यादा जोर डालने वाला है, काम करने के बाद आप मृतवत् हो जाते हैं, तो घर पहुँचने पर आरामकुर्सी पर लेट जाइये और तनाव दूर करने वाली शक्ति को कार्य में प्रवृत्त कर दीजिये। इस प्रकार ८-१० मिनट सारे शरीर को ढीला करके रखिए इसका परिणाम देखकर आप चकित रह जायेंगे।

जो व्यक्ति विश्राम प्राप्त करने और उसका सदुपयोग करने की कला से भलीभांति परिचित होता है वही अपने कार्य में कुछ अतिरिक्त शक्ति लगा सकता है, हर सेकेंड दो गज आगे निकल कर दौड़ में बाजी मार ले जा सकता है और जीवनयात्रा में, जहां और लोग थककर गिर पड़ते हैं, अपनी मंज़िलें तय करता जा सकता है। (आरोग्य से उद्धृत)

कब्ज पर विजय

कब्ज हद दर्जे का परेशान करने वाला रोग है पर जितना ही यह अधिक परेशान करने वाला है उतना ही आसान है इसका जाना, बशर्ते कि आप इसे हटाने के लिए कुछ करने को सचमुच तैयार हों।

आप तो अपने मामूली कब्ज से पीड़ित होंगे पर मुझे तो रोज ही ऐसे आदमी मिलते हैं जो आज भूल गए हैं कि उन्हें कभी अपने आप भी शौच होता था। वे हर दूसरे, तीसरे या चौथे दिन दवा लेकर शौच लाते हैं और जो दो-तीन दिन पर शौच होने से संतुष्ट नहीं हैं वे हर रोज रात को राम नाम लेने की तरह कल कब्ज होने का ध्यान करते हैं और उसे सवेरे हटाने को दवा लेकर सोते हैं, इस तरह रोज कब्ज और रोज दवा की आदत लोगों में कितनी अधिक है इसका अंदाज आप इसी से कर सकते हैं कि संसार में कुल मिलाकर जितनी कीमत की दवा और रोगों की बिकती है उससे कई गुना अधिक केवल कब्ज की बिकती है और इसमें हर्र-बहेरा-आंवला, गुलकंद, मुनक्का और उन सिगरेट, बीड़ी, काफी, चाय, चुरट की कीमत नहीं जोड़ी गई है, जिनका उपयोग भी लोग कब्ज दूर करने को किया करते हैं।

वास्तव में अधिकतर लोग अपने शरीर की कार्यविधि के बारे में नहीं जानते। कब्ज का कारण नहीं समझते। समझते ही नहीं, समझने की कोशिश भी नहीं करते। उनकी एक छोटी-सी किसी मशीन, साइकिल या मोटर में कुछ नुक्स पैदा हो जाय तो उसे वे सौ बार खोलें मूंदेंगे, गड़बड़ी का कारण ढूंढेंगे पर अपनी शरीररूपी मूल्यवान् मशीन का कुछ भी खयाल न करेंगे, क्योंकि यह किसी तरह अंत तक चलती रहती है और बंद होती है तो केवल एक बार, जब इसे बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता।

कब्ज और अन्य रोग

इतना ही नहीं कि कब्ज से शरीर में सिर्फ सुस्ती छाई रहती है, पेट भारी रहता है, सिर में दर्द रहता है, खुश्की बनी रहती है,

नींद ठीक नहीं आती, दिमाग उड़ता रहता है, भूख कम लगकर रह जाती है, पर कब्ज शरीर में इन लक्षणों को उत्पन्न करने के साथ साथ अनेक अन्य रोग पैदा करता है। अनेक क्या, जितने भी रोग हैं प्रायः उन सबकी जड़ में यही रहता है। तभी तो इसे सब रोगों की नानी कहते हैं। रोग तो एक विकृति है, कोई भी रोग क्यों न हो यह शरीर की विकृति का लक्षणमात्र है और कब्ज विकृति पैदा करने में सर्व-समर्थ है। कैसे, सो सुनिए—आप जो खाते हैं उसके पाचन एवं परिपाक के बाद जो कूड़ा-कचरा-मैल बाकी बचता है उसके शरीर से समय पर खारिज न होने को ही तो कब्ज कहते हैं? यह मल जब समय से नहीं निकलता तो अंदर पड़ा पड़ा सड़ने के सिवा और क्या कर सकता है? वहां सड़ने से बदबू पैदा होती है, मल अधिक विकारमय बनता है। उससे गैस निकलती है, जो जहर का असर रखती है और गैस का स्वभाव है ऊपर उठना, फैलना। वह सारे शरीर में पहुंचने की कोशिश करती है और शरीर के अंग-अंग में पहुँचकर उनके स्वाभाविक कार्यों में बाधक होती है। जब यह भयंकर बाधा उनमें लग गई तो शरीर अपना स्वाभाविक कार्य कैसे कर सकता है?

यही नहीं, मल का स्थान जो आंतें हैं उनमें चूसने की विचित्र शक्ति है। पाचन के बाद जो बचा हुआ सामान इन आंतों में आता है वह तरलरूप में रहता है यानी उसमें पानी होता है। आंतों का काम इस पानी को जज्ब करना एवं बचे भाग को ऐसा ढीला रहने देना है कि उस पर मलधारक (याने आंत का वह भाग जहां मल जाकर इकट्ठा होता है) की मांसपेशियां ठीक काम कर सकें और उसे बाहर निकाल सकें। पर जबतक मल इन आंतों में पड़ा रहता है वे इसकी नमी चूसती ही रहती हैं और मल जब

सड़ जाता है तो अपने स्वभावानुसार उसका जहर भी वे चूसने को मजबूर होती हैं और चूसकर खून में मिलाती रहती हैं। इस दूसरी विधि से भी शरीर में जो विष आता है वह रक्त को विकृत करता है और रक्त-संबंधी अनेक रोगों को जन्म देने के साथ साथ शरीर के सभी अंगों के कार्यों को शिथिल करता एवं उन्हें रोगी बनाता है।

और जब यह चक्र, दिनों, महीनों ही नहीं, बल्कि वर्षों चलता रहता है तो फिर शरीर और उसमें रहने वाले दिमाग के निकम्मे होने में क्या संदेह है।

दवाएं क्या करती हैं ?

इस स्थिति को दूर करने के लिए दवा ली जाती है। दवाएं अंदर जा कर क्या काम करती हैं ? इसका तमाशा देखना हो तो आप इन अधिकांश दवाओं का एक लघुतम भाग अपनी आंख या नाक में डालें तो इन दवाओं की करतूत तुरन्त आपकी समझ में आ जायगी। आप देखेंगे कि इन अंगों में दवा पहुँचते ही उनमें जलन पैदा होगी और उनसे पानी बहने लगेगा, इसी तरह जब ये दवाएं आमाशय, छोटी आंतों, बड़ी आंतों और मलधारक भागों में से गुजरती हैं तो वे इनसे पैदा हुई जलन के कारण पानी और लुवाब निकलने लगते हैं और इन दवाओं के कारण नहीं, इस निकले हुए पानी और लुवाब के कारण मल आंतों से निकल जाता है, जिसे लोग कब्ज दूर होना कहते हैं। रोज-रोज दवा लेते रहने पर दवाओं का असर आंतों पर कम हो जाता है, उनसे पानी और लुवाब निकलना रुक जाता है। इस तरह दवा का असर धीरे-धीरे जाता रहता है। फिर और तेज दवा ली जाती है और वह भी कुछ दिन बाद निकम्मी हो जाती है पर तो भी लोग दवा

लेते ही रहते हैं। उनकी सुन्दर पैकिंग लुभावनी शीशी उनका पीछा नहीं छोड़ती।

पेट साफ होना स्वाभाविक है

कब्ज रहना बिल्कुल अस्वाभाविक है। कुदरत ने आंतों में वह बल दिया है कि वे मल को आसानी से दूर करती रहें। वे यह कार्य तभी स्वाभाविक रूप में कर सकती हैं जब हम खाद्यों को उनके स्वाभाविक रूप में ग्रहण करें। खाद्यों में फल, तरकारियां, अन्न और दूध ही तो आते हैं। पर हम इन में से कितनों को अपने स्वाभाविक रूप में लेते हैं? हम फल और ऐसी तरकारियों का—जिन्हें स्वाभाविक रूप में बहुत सरलता से खाया जा सकता है—बहुत कम उपयोग करते हैं या बिल्कुल नहीं करते। अन्नों की भूसी यानी आटे का चोकर, चावल का कन हम दूर कर देते हैं। दूध का पानी हम जला कर या बिल्कुल निकाल कर खोए या छेने के रूप में इस्तेमाल करते हैं या रसगुल्ला और संदेश बनाकर खाते हैं। गन्ने के रस की हम चीनी बनाते हैं, मिर्चे-मसालों को, जिनकी शरीर को बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, विकृत स्वाद के वशीभूत होकर खाते हैं। अतः यदि आप चाहते हैं कि कब्ज न रहे तो इसका विचार शौचालय में नहीं, भोजनालय में कीजिए। भोजन पर, वह स्वादिष्ट होने के अलावा कब्ज-कारक है या कब्ज-निवारक इस दृष्टि से भी सोचिए।

कब्ज निवारण के लिए भोजन

तब आप अब मैदा, महीन आटे की जगह चोकर समेत मोटा आटा खायेंगे, चावल कन समेत ही लेंगे, आपके भोजन में फल-तरकारियों की मात्रा अन्न से दूने वजन की होगी, दूध कच्चा या एक उफान का पीयेंगे। लीजिये कब्ज की दवा हो गई। यदि

आपने यह गुर पकड़ लिया तो आपने कब्ज की जड़ में कुठाराघात शुरू कर दिया।

यदि आपको कब्ज बहुत अधिक और पुराना है तो खीरा, ककड़ी, गाजर, टमाटर, पालक या पातगोभी को कच्चा ही इस्तेमाल कीजिए। डरिए नहीं, मैं आपको इन्हें सेर दो सेर खाने को नहीं कह रहा हूं। चौबीस घंटे में केवल एक पाव लें और सो भी केवल एक नहीं कइयों को मिलाकर लें। किन्हीं दो-तीन को छोटा-छोटा काटकर एवं मिलाकर ऊपर से नींबू नमक डाल कर और उन्हें खाकर देखें। इसके विशिष्ट स्वाद की कल्पना आप इनका उपयोग किए बगैर नहीं कर सकते। केवल एक बार इनका उपयोग करने के बाद ही इनका तिरस्कार करने की सोचें।

कै बार खायें ?

केवल तीन बार खाएं। यदि आप दिन भर में केवल दो बार भोजन करते हैं तो और भी अच्छा है और यदि आपकी उम्र चालीस वर्ष से ऊपर है तो मेरी सलाह है कि आप जरूर दो बार ही खाएं। जब मैं दो या तीन बार खाने को कहता हूं तो उसका अर्थ आप शब्दशः लगाएं। अर्थात् दो या तीन बार के अलावा मुंह में पानी के सिवा कुछ भी न डालें। तब फल कब खाएं ? ठीक ही है, लोग तो फलों को घलुवा-घाता समझ कर भोजन के घंटे आध घंटे बाद खाते हैं और इन्हें बिना भूख के खाने से जब नुकसान होता है तब दोष अपनी अक्ल को नहीं, गरीब फलों को दिया जाता है। और ऐसे अक्लमंदों द्वारा ही अमरूद से जुकाम, खीरे ककड़ी से जूड़ी-ताप, आम से फोढ़े-फुंसी और खरबूजे से हैजा होने की बात कही और चलाई जाती है। फलों को भोजन का अंग बनावें सवेरे का नाश्ता केवल फलों का हो, जी चाहे तो

साथ में थोड़ा दूध भी हो सकता है। दोपहर और शाम को भोजन के साथ भी कुछ फल रक्खें और उन्हें भोजन का अंग समझ कर खाएं, दूसरे खाद्यों को उनकी जगह कम करें। एक बात फलों के बारे में आपको और बता देनी है कि मौसमी फल, आपके घर के दस-पांच कोस की दूरी में पैदा होने वाले फल, आप को जो फायदा पहुँचाएंगे वह लाभ देने की क्षमता, दूर से आए, कई दिनों पहले तोड़े, बासी फलों में नहीं है।

पानी ध्यान रख कर पियें

बहुत से लोगों को कब्ज केवल इसलिए होता है कि वे पानी बहुत कम पीते हैं। जब ये लोग पानी पीने की आदत डाल लेते हैं तो इनका कब्ज फौरन चला जाता है। आप भी जाड़े के दिनों में दो ढाई सेर और गर्मी के दिनों में ढाई तीन सेर पानी जरूर पिएं। सवेरे उठते ही, रात को सोते समय, भोजन के एक घंटे पहले और दो घंटे बाद पानी पीना एक बढ़िया आदत है।

आंतों को सशक्त बनावें

उन आंतों का स्थान, जिनमें मल रहता है, एवं जिनके अपना कार्य ठीक तरह न कर सकने के कारण कब्ज होता है, नाभि के तीन ओर है। वह नाभि के दाहिनी ओर नीचे से ऊपर क ओर आती है और वहां से बाएं तरफ बाईं कोख तक पहुँचती है, फिर नीचे की ओर उतरती है। वहां उनका अंतिम छोर है, जहां मल इकट्ठा होता रहता है, उस छोर को मलधारक कहते हैं। यहां मल धीरे-धीरे इकट्ठा हो कर समय-समय पर खारिज होता रहता है। इस आंत को सशक्त बनावें। आंत मांसपेशियों की बनी है और आप जानते हैं कि कसरत प्रत्येक मांसपेशी को सशक्त बनाती है। अतः कुछ ऐसी कसरतें करें जिनका प्रभाव आंतों पर पड़े। टहलने की

कसरत इस कार्य के लिए यथेष्ट प्रभावशाली है। सवेरे-शाम दो-दो या तीन-तीन मील निश्चित रूप से टहल कर आप आंतों को वह शक्ति देंगे कि वह अपना काम बड़ी सुगमता से करने लगेंगी। इस के साथ ही आंतों को मजबूत बनाने की एक दूसरी तरकीब भी है। वह है उन्हें ठंडक पहुँचाना। एक मोटा सा तौलिया चौपर्त कर छः इंच चौड़ा और एक फुट लंबा बना लें और ठंडे पानी में भिगोकर और हलका-सा निचोड़ कर पेड़ू पर अर्थात् नाभि के नीचे पंद्रह-बीस मिनट रक्खें। इसके बजाय सेर भर मिट्टी ठंडे पानी से लप्सी-सी सानकर तौलिए जितनी ही लंबी चौड़ी बनाकर ठंडे तौलिए की जगह इस्तेमाल की जा सकती है। कुछ लोगों को इस मिट्टी की पट्टी से अधिक लाभ होता है। ठंडक का इनमें से कोई भी एक प्रयोग टहलने जाने के पूर्व करें। पहले ठंडक फिर टहल कर गरमी लाने का यह प्रयोग आंतों को शीघ्र सजग करके उन्हें अपने कार्य में तेजी से प्रवृत्त करता है।

शौच की आदत डाल

शौच की हाजत की राह न देखें। हाजत तो उन्हें होती है जो हाजत की सुनते हैं। दिनों तक उसकी न सुनने से वह मंद या लुप्त हो जाती है। अतः कोई भी समय निश्चित करके दो बार शौच अवश्य जाएं। शौच का जो समय निश्चित करें उसका पालन जरूर करें, शौच न हो तो भी शौचालय में दस मिनट जरूर बैठें। धीरे-धीरे दोनों वक्त शौच अवश्य होने लगेगा। आरंभ में किसी एक वक्त न हो तो घबराएं नहीं। बिगड़ी आदत धीरे-धीरे ही बनती है।

यह वह सरल विधि है, जिससे उस विश्वव्यापी कब्ज से, कि जिसकी बदौलत बड़ी-बड़ी ऐसी कंपनियां खुल गई हैं जो कब्ज

दूर करने की दवा बना कर लाखों रुपए प्रतिवर्ष कमाती हैं और सैकड़ों नहीं, हजारों ही डाक्टर दवाफरोशों को अपनी दवा बेचने के लिए इतनी ही रकम कमीशन में देती हैं—आप को छुटकारा मिलेगा। बेचारे डाक्टर इन दवाओं की अयोग्यता पग-पग पर अनुभव करते रहते हैं लेकिन पैसे के लालच में दवा के गीत गाए ही जाते हैं और आपको भी वे गीत प्रिय लगते हैं। क्योंकि दवा लेने में आपको केवल कुछ पैसे ही देने पड़ते हैं। यहां तो आपको कुछ अधिक करना है। यदि आप कुछ करके पाने के सिद्धांत को मानते होंगे तभी इस लेख में बताई विधि पर चल सकेंगे।

स्वप्नदोष, अग्निमंदता, रक्तास्राव, बवासीर, स्मरणशक्ति का ह्रास, श्वेतप्रदर, मासिक की अनियमितता, सिरदर्द, कमर दर्द, दुर्बलता के अनेक रोगियों ने इस विधि को अपनाया है और कब्ज दूर होने के साथ साथ उन्हें उपर्युक्त रोगों से भी मुक्ति मिली है।

(आरोग्य से उद्धृत)

———

शौच पर विजय

शौच कै बार होता है ? और कैसे होता है, यह प्रश्न ऊपर से तो निरर्थक-सा दिखाई दे सकता है पर इस प्रश्न के उत्तर से स्वास्थ्य और रोग की दशा पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। बहुतों से यह प्रश्न किया जाता है। उत्तर में अधिकतर लोग एक बार, कुछ दो बार और बहुत थोड़े लोग तीन-चार बार बताते हैं। एक बार वालों में एक मसल मशहूर है, एक बार योगी, दो बार भोगी और तीन बार रोगी इस कहावत में सत्यांश न हो यह नहीं है। पर इसका सत्य समझने को हमें लौटकर उस समय की ओर देखना होगा जब योगी होते थे और भोगी तथा रोगी का ठीक अर्थ समझा जाता था। योगी दोपहर को भोजन करता था और सवेरे केवल एक

बार शौच जाता था। गृहस्थ को भी संध्या-वंदन, पूजा-हवन से दोपहर के पहले छुट्टी नहीं मिलती थी, वह दोपहर और शाम को दो बार भोजन करता था और सवेरे और शाम को दो बार शौच जाता था। अपना नित्यकर्म न करने वाले और बार-बार खाकर बार-बार शौच जाने वाले को रोगी समझा जाता था। या यों कहें कि जो रोगी होता था दो से अधिक बार खाता था और तीन-चार बार शौच जाता था। बहुतों को जानकर ताज्जुब होगा कि यह पुरानी कहावत स्वास्थ्य-विज्ञान की कसौटी पर सोलहों आने सही उतरती है। कै बार शौच जाना ठीक है इस बारे में वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान करने वाले बताते हैं कि जै बार खाना तै बार शौच जाना। इस नियम का अपवाद बनकर सब स्वस्थ नहीं रह सकते।

मनुष्य के शरीर में पाचन के तीन मुख्य स्थान हैं। आमाशय, छोटी आँत और बड़ी आँत। बड़ी आँत में पाचन का काम बहुत कम रह जाता है। उसका प्रधान काम है पाचन के बाद बचे अर्थात् मल को बाहर निकालना। भोजन का आमाशय में पाचन का काम प्रायः चार घंटे में समाप्त होता है, फिर वह छोटी आंत में जाता है इतना यहां भी लगता है और बचा हुआ मल पित्त, कफ आदि को लेकर बड़ी आँत में चला जाता है। यहां उसे छः से दस घंटे तक लग जाते हैं। इससे अधिक दो घंटे तक बड़ी आंत में रहने पर वह मल की आवश्यक नमी को खींच लेती है तब मल कड़ा पड़ जाता है। कई बार खाने और एक बार शौच जाने वालों के मल की जांच करने पर पता चला है कि वह मल पचास या इससे अधिक घंटे तक बड़ी आंत में पड़ा रहता है। वह आंत के अपने ज़ोर से कम बल्कि ऊपर से आने वाले नये मल के बोझ से ही अधिकतर नीचे सरककर बाहर होता है। मल में दुर्गन्ध होने का भी कोई कारण नहीं है। छोटी आंत के अन्त तक पहुँचने में पचे भोजन में

किसी प्रकार की बदबू नहीं होती और न सड़ने का कोई चिह्न ही। जिनके मल में दुर्गन्ध है उन्हें समझ लेना चाहिये कि बड़ी आँत में मल जरूरत से ज्यादा देर तक रहा है। नवजात शिशु, अर्ध-जंगली मनुष्य, बनावट में मनुष्य से मिलने वाले बन्दर, हृष्ट-पुष्ट बच्चों एवं स्वस्थ मनुष्यों के मल में किसी प्रकार की बदबू नहीं होती। बच्चे, जंगली मनुष्य और बन्दर हाजत होते ही शौच जाते हैं और स्वस्थ बच्चों की आदत का अध्ययन करने पर उनके शौच जाने एवं भोजन करने का समय बड़ा नियमित मिला है। उन्हें शौच खुलकर होता है जिससे एक बार का सारा मल बाहर हो जाता है और बड़ी आंत में इकट्ठा होकर पुराना नहीं पड़ने पाता।

मल कैसा हो ?

साधारणतः समझा जाता है कि मल बंधा हुआ होना चाहिये और उसमें थोड़ी बदबू होना बुरा नहीं है। पर यह बात नहीं है। बंधा मल कब्ज का चिह्न है। सुसभ्य समाज में प्रायः सभी को कब्ज रहता है। जिससे मल खुश्क और कठिन हो जाता है। अतः मल के संबंध में लोगों के मन में यह गलत विचार घर कर गया है। मल हमेशा नरम ही होना चाहिये और उससे किसी प्रकार की बदबू नहीं आनी चाहिये। जो मांस-मछली आदि जल्द सड़ने वाली चीजें नहीं खाते और जिनके भोजन में फल, तरकारियां, अन्न और दूध आदि की प्रधानता रहती है उनके मल में करीब करीब बू नहीं आती और हुई तो हल्की जैसी स्वस्थ छोटे बच्चों के मल में। —ं, मांसाहारी के मल में बदबू आये बिना नहीं रह सकती। मांस पाचन के लिए आवश्यक आमाशय की गर्मी के संसर्ग से सड़ने लगता है और दुष्पाच्य होने के कारण उसका थोड़ा बहुत भाग बिना पचा रह ही जाता है जिससे आंतों में पहुँचने पर सड़न उत्पन्न हो जाती है। तृणाहारी बछड़े और मांसाहारी कुत्ते के

मल की तुलना करने से यह बात सरलता से समझ में आ सकती है। सड़न कब्ज होने पर ही उत्पन्न होती है और कब्ज गलत भोजन करने या मल के अधिक देर तक बड़ी आंत में रहने या रुकने के कारण होता है। बड़ी आंत की मल को बाहर निकालने की शक्ति धीरे धीरे कम होती जाती है। वे ढीली पड़ जाती हैं, फैल जाती हैं, उनकी दशा कुछ लकवा मारे अंग की सी हो जाती है। ऐसी आंत आंव का अड्डा बन जाती है। इससे कभी-कभी अपेन्डिसाइटिस और नासूर जैसे घातक रोग हो जाते हैं।

सारांश, भोजन के पूरे पाचन में १४ घंटे से १८ घंटे तक लगते हैं, इस हिसाब से जो भोजन आज दोपहर को बारह बजे किया जाय उसका मल कल सवेरे छः बजे तक और जो भोजन शाम को आठ बजे किया जाय उसका मल दिन में दो बजे तक और सवेरे सात बजे जो नाश्ता किया जाय उसका मल उसी दिन रात को नौ-दस बजे तक निकल जाना चाहिये। जागते रहने पर भोजन का पाचन तेजी से होता है पर सो जाने पर पाचन की गति बहुत मन्द पड़ जाती है।

शौच की आदत

शौच होना आदत की बात है। एक ही बार शौच वाले आवश्यकतानुसार दो या तीन बार की आदत डाल सकते हैं। आलसी को काम में लगाने की भांति कुछ कठिनाई पड़ेगी, जो भोजन के उचित परिवर्तन से दूर की जा सकती है। ढीली आलसी आंत को काम में लगाने के लिए फुजले—खुज्के की सहायता देनी होगी यदि मल को चिकनाहट देने वाली ग्रंथियां सूख गई हैं, उन्होंने अपना काम बन्द कर दिया तो उन्हें चिकनाई की मदद बाहर से पहुँचानी होगी।

बाहरी सहायता पाकर काम करने लगने पर आंत की धीरे धीरे स्वाभाविक शक्ति का विकास होगा और समय पाकर चट अपना काम आप करने लगेगी। तब अतिरिक्त सहायता वैसे ही छूट जायगी जैसे सशक्त हो जाने पर कमज़ोर की लकड़ी।

कब्ज का कारण

कब्ज का कारण तो हमारा भोजन को सुधारकर चक्षुप्रिय बनाकर खाना है। हम सब अन्नों की भूसी निकाल देते हैं। सब तरकारियां हम खूब छीलकर खाते हैं। वस्तुतः खाद्य के जो भाग हम अज्ञानवश निकाल देते हैं वे कुदरत की ओर से आंतों को ताकत देने के लिए होते हैं। मशीन ने भी भोजन को इस प्रकार सफेद निस्सत्व बनाने में बहुत मदद पहुंचाई है। इसकी कृपा से साफ सफेद मैदा मिलने लगा और बाटा के सफेद पालिशदार बूट सरीखे चमकते चावल। गेहूँ से जिस चोकर को निकाल कर सफेद मैदा या आटा बनाया जाता है वह चोकर आज सर्वश्रेष्ठ आंतसहायक साबित हुआ है। दुर्भाग्यवश लोग अभी तक इसकी उपयोगिता से परिचित नहीं हो पाये। कुछ नाजुक तबियतों का खयाल है कि उससे आंत छिल जाती है। डाक्टर-वैद्य इस बारे में उतने ही बुद्धू हैं जितने उनके मरीज। इसीलिए खुद वे कब्ज के वैसे ही शिकार रहते हैं जैसे उनके रोगी। रोगी बेचारा तो उनसे आकर रोता है पर वे किससे रोवें? उनका ज्ञान उन्हें चुप रहने को मजबूर करता है। डाक्टर से कब्ज की शिकायत करने पर रोगी को दवा की पुड़िया पकड़ा देते हैं। कब्ज के प्रसार का अन्दाजा लगाने वालों ने इस बात से इस रोग के सबसे अधिक फैले होने का अनुमान किया है कि आज दुनियां भर के रोगों की दवाइयों से कब्ज की दवा अधिक बिकती है, इसलिये नहीं कि फायदा करती है बल्कि इसलिए कि दवा से कदापि स्थायी रूप से कब्ज नहीं जाता। बार-बार

लाचार होकर उसे खाना पड़ता है। निरापद दिखाई देने वाली ये दवाइयां आंतों को खरोंच डालती हैं। आंत इनकी मार से, जलन से पहले तो कुछ अधिक काम जरूर करती है पर धीरे-धीरे वे सुस्त हो जाती हैं और फिर कड़ी से कड़ी विरेचक दवा भी उन पर काम नहीं करती।

चोकर मुँह में डालने पर जब तक वह पेट में नहीं चला जायगा मुँह उस पर अपना काम करता रहेगा। यही हाल आंतों का भी है। चोकर का कुछ अंश छोड़ कर सारा पचता नहीं है। पाचन में उसका घनत्व कम नहीं होता बलिक पानी से भींगकर वह कुछ बढ़ ही जाता है। आंत की चूड़ी की शकल की मांसपेशियां उसे तबतक बाहर निकालने का प्रयास करती रहती हैं जब तक वह सारा का सारा निकल नहीं जाता। खाली आंतें भी मुँह की तरह कोई-काम नहीं करतीं। जब चोकर आंत में पहुँचता है तो जब तक चोकर का एक एक कण निकल नहीं जाता, आंत काम करती रहती है। अतः कब्ज के रोगी को, जिन्हें आंत से काम लेना है, चोकर को अपना प्रधान सहायक बनाना चाहिये। उन्हें साफ चोकर, जिसमें किसी तरह का कूड़ा-करकट न हो, प्रत्येक भोजन के साथ खाना चाहिए। दिन भर की पूरी मात्रा चार तोले की है। स्वादिष्ट बनाने के लिये चोकर को पानी में धोकर सुखा लेना चाहिये। फिर तवे पर थोड़ा भून लेना चाहिये। चोकर फलों के साथ, तरकारी में मिलाकर, दलिए के साथ पकाकर या आटे में अतिरिक्त डालकर या भोजन के बीच में सूखा भी खाया जा सकता है। प्रत्येक भोजन के साथ रुपये सवा रुपये भर ले सकते हैं। रोटी में मिलाकर पकाने के लिए तीन हिस्सा आटा एक हिस्सा चोकर लेना चाहिये।

आंत के काम को दुरुस्त करने में दूसरा मददगार ईसबगोल होगा। ईसबगोल का प्रयोग आंत की बीमारी में बराबर होता है।

दस्तों को वह रोकता है यह सब जानते हैं, पर कब्ज दूर करने में भी वह सहायक है यह कम लोगों को विदित है। जिसकी आंत में चिकनाहट पैदा होना कम हो गया है उसके लिए ईसबगोल का प्रयोग बहुत आवश्यक है। पानी में भिगोने से यह लुवाबदार और दही सा हो जाता है। मल को आंत से सरकाने में मदद करता है। इसका प्रयोग दवा की तरह नहीं भोजन की तरह करना चाहिये। कुछ दिनों तक प्रत्येक भोजन के साथ यह रहे। भिगोये ईसबगोल में शहद, फल का रस या थोड़ा-सा गुड़ डाल देने से सुस्वादु खाद्य बन जाता है। इसकी दिन भर की मात्रा सवा तोला है। इतना एक बार में या दो बार में करके ले सकते हैं, ईसबगोल से पंद्रह गुने पानी में दो तीन घंटे उसे भिगोना चाहिये और तब लेना चाहिये, भूसी लेनी हो तो इतने ही वजन की भूसी लें। उसे भिगोने की जरूरत नहीं होती, फांक कर पानी पी लें। दोनों चीजें साफ और अच्छी लेनी चाहियें।

चोकर या ईसबगोल या दोनों की मिली-जुली मदद से आवश्यकतानुसार दो या तीन बार शौच होने की आदत आसानी से डाली जा सकती है। बहुत कम आदमियों की आंतें होंगी जो इनकी मदद पाकर उचित काम न करने लगें और समय पाकर उनमें स्वाभाविक बल न आ जाय।

कुछ ऐसी निश्चेष्ट आंतें भी होती हैं जो ईसबगोल और चोकर की सहायता पाकर भी शुरू में पूरा काम नहीं कर पातीं। ऐसी दशा में एनिमा का समुचित प्रयोग आवश्यक है। एनिमा रात को सोने के पहले लेकर आंतों को साफ कर लेना चाहिए। एनिमा का पानी हलका गुनगुना रहे। करीब सेर भर पानी लेना काफी होगा। पर एनिमा पर ही आश्रित न रहा जाय। चोकर-ईसबगोल का भी प्रयोग हो। शौच के लिए समय पर पाखाने में जरूर पहुँच जाना

चाहिए और एनिमा तो ऐसी ही हालत में लिया जाय जब आंत पूरी तरह साफ न होती हो।

बच्चों में आदत डालें

अक्सर बच्चे खेल में भूले रहते हैं और उनके शौच जाने का समय टल जाता है। अधिकतर बच्चे एक बार ही शौच जाते हैं और कई तो तीन दिन में एक बार। माता-पिता एवं अभिभावकों को इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। बचपन में अच्छी या बुरी आदत आसानी से पड़ सकती है। बच्चों को निश्चित समय पर तीन बार शौच के लिए भेजना ही चाहिये। जिन बच्चों का पेट साफ रहता है वे बीमार नहीं पड़ते, उनकी पाचन-क्रिया ठीक रहती है, वे खूब सोते हैं, वे रोते नहीं। वे प्रसन्न वदन रहते हैं, उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन नहीं होता, वे ठीक पढ़ते और ठीक बढ़ते हैं। जिसका पेट साफ रहता है, उसकी त्वचा स्वच्छ, जिह्वा मैलरहित, श्वास सुगंधित, क्षुधा तीव्र, दिमाग साफ और मन आशाओं से परिपूर्ण रहता है। उसे रोग नहीं लग पाते और काम करने की उसमें अनुपम शक्ति रहती है। याद रखिए पेट का साफ रहना आधा भगवान् मिलना है और थोड़े से ध्यान देने से यह सबके लिए संभव है। ("आरोग्य" से उद्धृत)

सिरदर्द पर विजय

सिरदर्द बहुत परेशान करने वाला तो होता ही है, यह खतरे की घंटी भी है, कभी-कभी होने वाले मामूली सिरदर्द लेकर खोपड़ी चटकाने वाले सिरदर्द तक से लोग परेशान होते रहते हैं और कष्ट भी बहुत अधिक सहते हैं, फिर भी उनमें से विरला ही कोई इस तकलीफ की जड़ तक पहुंचने की कोशिश करता है।

एस्पिरिन जैसी दवाओं का सहारा लेना ठीक नहीं होता, क्योंकि उनसे किसी स्थायी लाभ की आशा नहीं की जा सकती। पहले तो यह पता लगाने का प्रयत्न होना चाहिए कि आखिर सिरदर्द होता ही क्यों है और तब कोई ठोस काम करने की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए।

जुकाम से पीड़ा

अगर आप अपने आहार में आवश्यक सुधार कर लें तो आपको सिरदर्द से अवश्य छुटकारा मिल जायगा। संभव है, आपके सिर-दर्द का रूप कुछ और ही हो। हो सकता है नाक की जड़; भौंहों के मध्य भाग में भारीपन लिए दर्द हो। इस तरह का दर्द प्राय: प्रति-श्याय के कारण होता है। नासिका-रंध्र के ऊपर के भाग में श्लेष्मा जमा हो जाती है और उसका दबाव पड़ने के कारण तेज दर्द हुआ करता है।

आंखों की देख-भाल

अगर दर्द ललाट के पिछले भाग में हो तो यह संभवतः आंखों पर ज्यादा ज़ोर पड़ने के कारण हुआ होगा। वर्तमान युग ने समाज को जो रूप दिया है उसमें आंखों पर ज्यादा ज़ोर पड़ना स्वाभाविक है। पढ़ने या दूसरी चीजें साफ-साफ देखने के लिए आपको ऐनक की भी जरूरत महसूस हो सकती है, पर दरअसल ज़रूरत ऐनक की नहीं, आंखों को विश्राम देने, उनका व्यायाम करने और उन्हें स्नानद्वारा शक्ति प्रदान करने की है। दर्द का कारण चाहे जो भी हो, पर लगातार होने वाला दर्द आंखों के लिए खतरे का सूचक है, इसलिए उसकी रोक-थाम होनी ही चाहिए। कम-से-कम अपनी आंखों की देख भाल तो कीजिए ही। ट्रेन, बस या कम रोशनी में पढ़ने में कोई बुद्धिमानी नहीं है।

शुद्ध हवा की अप्राप्ति

सिर के ऊपरी भाग में तनाव मालूम होना सिरदर्द का सबसे मामूली रूप है। यह ताजा हवा की प्राप्ति में कमी होने या नाड़ी-स्थान पर जोर पड़ने से पैदा होता है। काम करने और रहने के स्थान भी प्रायः कम हवादार हुआ करते हैं। अगर इस स्थिति में आवश्यक परिवर्तन हो जाय तो इस प्रकार के दर्द का कारण बहुत कुछ दूर हो जायगा।

अस्वास्थ्यकर वातावरण

बहुत से लोगों को अस्वास्थ्यकर वातावरण में काम करना पड़ता है। ऐसे लोगों को थोड़ी थोड़ी देर के बाद स्वच्छ हवा की प्राप्ति के लिए खिड़की के पास जाते रहना चाहिए और नाश्ता करने के लिए बाहर निकल जाना चाहिए। अगर सिर भारी मालूम हो तो घर पहुँच कर भोजन करने के पहले कुछ देर लेट कर बदन का तनाव दूर कर लेना और शांत हो लेना चाहिए। वातावरण की खराबी से उत्पन्न होने वाला सिरदर्द हवादार जगह और शांत वातावरण में रहने लगने पर बड़ी शीघ्रता से चला जाता है। फिर भी अगर आपका सिरदर्द बना ही रहे तो समझिए कि उसका कारण वातावरण नहीं, और कुछ है।

आधासीसी

दुभाग्यवश आप आधासीसी के भी शिकार हो सकते हैं। इस रहस्यमय रोग का आज कल विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है। लोग इस रोग से एकाएक ग्रस्त होकर पीड़ा से कराहने लगते हैं। इसमें वमन की भी प्रवृत्ति देख पड़ती है। यह प्रायः एक पीढ़ी का देकर भी दमे आदि के रूप में संक्रमणद्वारा प्रकट हुआ करता है

अतः इस रोग से पीड़ित लोगों को किसी अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक से उपचार कराना चाहिए; क्योंकि यह विभिन्न कारणों और संक्रमण से भी हुआ करता है।

कुछ लोगों के सिरदर्द का कारण मानसिक भी हुआ करता है। किसी विशेष अवसर या किसी कठिन कार्य से बचने या पिंड छुड़ाने की चिंता ऐसे ही कारणों में है। इस तरह के दर्द का उपचार मनोवैज्ञानिक पद्धति से ही ठीक होता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि सिरदर्द दरअसल वसा मामूली रोग नहीं है जैसा पहले मालूम होता है। इसे साधारण समझ कर इसकी ओर से लापरवाह होना और इसे बने रहने देना बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि यह वस्तुतः बहुत बड़े खतरे का सूचक है। (आरोग्य से उद्धृत)

—— ——

स्वप्नदोष पर विजय

"युवकों के रोगों में सिरताज कौन है ?"

अधिक सोचने की जरूरत नहीं, अगर आप अभिभावक या अध्यापक हैं या किसी कारण से युवकों के संपर्क में अधिक आते हैं और सहृदयतापूर्वक उनसे मिलते हैं तो आप तुरन्त कह उठेंगे—स्वप्नदोष।

आप पत्र-पत्रिकाओं को ही देखिए, जितने विज्ञापन आपको वीर्य-विकार के मिलेंगे अन्य किसी रोग के नहीं और स्वप्नदोष भी वीर्य-विकार ही समझा जाता है।

स्वप्नदोष को दूर करने का दावा करने वाली दवाओं के विज्ञा-

पत्र में इतना पैसा और कागज खर्च करने का कारण केवल यह है कि यह रोग बहुत फैला हुआ है।

मेरे पास भी अनेक युवकों के बड़े करुण पत्र आते हैं। एक दो नमूने लीजिए।

"मैं बचपन में कुसंगति में फंस कर हस्तमैथुन करने लगा और छोटी उम्र होने के कारण उसकी बुराई की ओर ध्यान नहीं गया। परन्तु जब ज्ञान हुआ तब सोचा कि मैंने यह क्या किया? मैंने अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। मेरा स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता ही गया तथा स्वप्नदोष होने लगा। मैंने चोरी से कई दवाएं ख़रीदीं, अखबारों में विज्ञापित अनेक दवाएं मंगवाई और उनका इस्तेमाल किया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। हालत इतनी बिगड़ गई है कि लोगों के सामने शर्म के मारे बैठ नहीं सकता हूँ, अपनी दुर्दशा को सोचता हूँ तो रोने लगता हूँ तथा आत्म-हत्या करने की इच्छा होती है।"

एक दूसरा पत्र

"जब मैं केवल आठ साल ही का था तो एक दिन क्या हुआ कि रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं उलटा हो गया, मेरी जननेंद्रिय बिस्तर के साथ छूने लगी इससे उसमें उत्तेजना हो आई और मुझे कुछ आनन्द की प्राप्ति होने लगी। आनन्द पाने के लिए अब मैं बहुधा इन्द्रिय को बिस्तर पर रगड़ने लगा। यह एक बुरी आदत की बुनियाद थी। यह आदत मैं घरवालों से छिपा कर रात को बिस्तर पर करता था। चौदह साल की अवस्था में वीर्य निकलना आरम्भ हो गया। इसी समय कुछ बदचलन दोस्तों की वजह से मुझे हाथ से वीर्य गिराने की भी आदत पड़ गई। सत्रह साल की अवस्था में मुझे इस आदत के बुरे परिणामों का पता चला और मैंने प्रण किया कि अब मैं ऐसा नहीं करूंगा।

"दुर्भाग्य से कुछ समय बाद जब कि रात को मैं सोया हुआ था तो करवट बदलने पर जब इन्द्रिय बिस्तर पर लगी तो अर्द्ध सुप्तावस्था में वह आदत मुझ पर सवार हो गई और वीर्य का नाश हो गया। सवेरे जब मेरी आंख खुली तो मुझे बहुत हैरानी हुई। दूसरे दिन मैंने एक रस्सी ली और अपनी दाईं टांग को चारपाई के साथ बांध कर सोने लगा ताकि करवट ही न बदली जा सके कि इन्द्रिय बिस्तर को न छूए। परन्तु कुछ दिनों बाद जब मुझे रस्सी खोलने का काफी अभ्यास हो गया तो सोई हुई दशा में ही जब मुझे उत्तेजना बहुत आती तो सुप्तावस्था में रस्सी को खोल लेता और वीर्य का नाश हो जाता।

"इसके बाद इस आदत को रोकने के लिए मैंने बहुत कुछ किया, रस्सी की जगह सांकड़ लगाई और उसमें 'रीडिंग लाक' लगा कर इस तरह सोता कि जब उठना होता तब मुझे बत्ती जला कर ताले के शब्द को ठीक करना पड़ता था तब कहीं ताला खुलता और मैं अपने आपको सांकड़ से खोल सकता था, यह तरीका एक महीने तक ठीक चलता रहा लेकिन एक दिन जब कि रात में आदत को पूरा करने के लिए करवट बदलने की व्यर्थ कोशिश कर रहा था तो और कोई चारा न बनने पर हाथ इन्द्रिय पर लगा और वीर्य का नाश हो गया। अब मेरे पास और कोई तरीका नहीं रहा कि मैं इस आदत को हटा सकूं।

"मुझे महीने में दस-बारह बार तक स्वप्नदोष हो जाता है और हर वक्त थोड़ा-थोड़ा सिरदर्द रहता है, जो पढ़ने से ज्यादा हो जाता है। स्मरण-शक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई है और जीवन भार-सा मालूम होता है।"

इन पत्रों में स्वप्नदोष का कारण भी आ गया है और रोग से छुटकारा पाने की इच्छा की तीव्रता भी इनसे प्रकट होती है और

सचमुच यदि इस तीव्रता का ठीक फायदा उठाया जाय तो यह रोग आनन-फानन में जा सकता है। एक किस्सा सुनिए—

एक चिकित्सक के पास एक स्वप्नदोष का रोगी पहुंचा और कहने लगा कि मेरी उम्र इक्कीस वर्ष की है। सोलह साल की उम्र में मैंने हस्त-मैथुन की कुटेव पकड़ ली। उस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और इस कुटेव के बावजूद भी मेरा स्वास्थ्य दो वर्ष तक ठीक रहा। अब जब स्वास्थ्य बिल्कुल गिर गया मैंने यह आदत छोड़ी है। आदत छोड़ी और स्वप्नदोष होने लगा।

"कब छोड़ी ?

"एक वर्ष हुआ।"

"छोड़ने की इच्छा कैसे पैदा हुई।"

"तीन वर्ष हुए मैंने 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक पुस्तक पढ़ी उससे मैंने जाना कि हस्तमैथुन बुरी चीज है। वीर्यनाश मृत्यु है।"

"क्या आप बता सकते हैं कि आपका स्वास्थ्य इस पुस्तक के पढ़ने से पहले गिरना शुरू हुआ या बाद में।"

युवक ने थोड़ा समय सोचने के लिए लिया और फिर बोला संभवतः पुस्तक पढ़ने के बाद। पुस्तक पढ़ते ही मुझे लगा कि मैंने अपना रक्त अनजाने में बहा दिया है, मैं दरिद्र हो गया हूं। मैंने महा-पाप किया है। इस चिन्ता ने मुझे अधमरा कर दिया और तब से अब तक में वास्तव में मेरे प्राण आधे से अधिक निकल गए हैं। और दुःख की बात यह है कि मैं जितना ही चाहता हूं कि स्वप्नदोष न हो उतना ही अधिक यह होता है।'

"तो कहिए कि वीर्यरक्षा के माहात्म्य ने और वीर्यरक्षा की चिन्ता ने ही आपको अधिक हानि पहुँचाई है।"

'पर मैंने अपना बहुत अधिक नाश किया है।"

"पर उस नाश को पूरा करने की शक्ति भी तो आप में है। आप के शरीर में वीर्य हमेशा बनता रहता है।"

बात युवक की समझ में आ गई और देखते-देखते उसके चेहरे का रंग बदल गया, लगा कि पहाड़-सी चिंता, जो वह ढोए फिरता था, ढह गई है। काली निराशा की जगह गुलाबी आशा ने ले ली है। उसके माथे की सिकुड़न मिट गई। उसके अंतर में डर के उमड़ते मेघ शांत हो गए।

कहना न होगा कि इस नए दृष्टिकोण ने युवक को फांसी के तख्ते पर से उतार लिया और वह उत्साहपूर्वक स्वास्थ्य-निर्माण के एक कार्यक्रम में लग सका। उसने स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया है और स्वास्थ्य अधिक उन्नत करते रहना उसकी 'हाबी' हो गई है।

तो वीर्यक्षय से अधिक मनुष्य को चिंता ही भस्म करती है।

बहुत-से युवक हमारे इसी युवक की तरह सोचते हैं। वे समझते हैं कि "अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत" पर शरीर तो खेत नहीं है। उसमें स्वयं बीज उपजाने की शक्ति है। वह उपजा सकता है और आप का शरीर लहलहा सकता है। आप केवल सहयोग दीजिए। आपका शरीर उन ब्रह्मचारियों से अधिक सुडौल, सपुष्ट और सुंदर हो सकता है जो स्वास्थ्य की ओर से लापरवाह हैं। जो जानते नहीं खोना क्या है। आप गौरवान्वित होंगे कि आपने खो कर पाया है।

मन से संबंध

स्वप्नदोष रोकना अधिकतर मन की बात है। मन का सहयोग प्राप्त कीजिए आपका स्वप्नदोष चला जायगा। मन बालक से भी अधिक कोमल है। उसे प्यार से समझाइए। बच्चे को डांटने-डपटने से वह बिछावन में पेशाब करना छोड़ सकता है? मां जब बच्चे को सुन्दर सुकोमल बिछावन पर सुलाती है, उसे जी भर कर प्यार करती है और कहती है आज मेरा मुन्ना बिछावन खराब नहीं करेगा, वह पेशाब करने के लिए जरूर उठेगा, तभी बच्चे का मन

और उसके द्वारा उसका अंतर्मन यह ग्रहण करता है कि बिछावन पेशाब करने की जगह नहीं है। वक्त पर उसका अंतर्मन उसे जगा देता है और आलस्य त्याग कर नाले पर जाने में सहयोग प्रदान करता है। इसी प्रकार आप अपने मन को समझाइए, प्यार से बतलाइए कि "स्वप्नदोष स्वाभाविक नहीं है, वीर्य स्वप्न में नाश होने की चीज नहीं है, उसका कार्य है शरीर को ओज और शक्ति प्रदान करना। जब यही मेरे शरीर में होगा, मैं शीघ्र शक्तिशाली और वीर्यवान् बनूंगा।"

आप जितनी ही सुकोमलता से यह कर सकेंगे, उतने ही अधिक आप सफल होंगे। पर आरंभ में आप घबराइए नहीं। बिगड़ैल घोड़ा कितना भी अच्छा सवार क्यों न हो एक दिन में वश में नहीं आता, कभी-कभी- तो वह लंबी दौड़ लगाता है। अच्छा सवार उसे दौड़ने देता है, न कभी चाबुक का इस्तेमाल करता है न एड़ ही लगाता है और अंत में ऐसे ही बुद्धिमान् सवार के वश में घोड़ा आता है।

एक भ्रम

स्वप्नदोष के रोगी समझते हैं कि उनका वीर्य नाश हो रहा है अतः वे रबड़ी-मलाई, हलवा-पूड़ी खा कर ही इस कमी को पूरा कर सकते हैं। यह भारी भ्रम है। चिंता और घबराहट के कारण उन्होंने अपना पाचन बिगाड़ लिया है और पाचन भी न बिगड़ा हो तो ये गरिष्ट चीजें किसी का भी पाचन बिगाड़ने में समर्थ हैं। उनके लिए होना चाहिए अनुत्तेजक, हल्का सुपाच्य और कब्ज-निवारक भोजन। यह भोजन भी बार-बार नहीं लेना चाहिए। सवेरे फल-दूध, दोपहर और शाम को चोकर समेत आटे की रोटी और यथेष्ट मात्रा में हरी तरकारियाँ, जिनमें मसाले के नाम पर

नमक, धनिया, हल्दी, जीरे से अधिक का प्रयोग न किया जाय। भोजन सोने से तीन घंटा पहले ही समाप्त करलेना चाहिए और जल भी यथेष्ट पीना चाहिए। जल पीने का बढ़िया वक्त है सवेरे उठते ही, सोते समय और भोजन के एक घंटा पहले और दो घंटे बाद।

मनबहलाव

स्वप्नदोष से पीड़ित रोगी एकांतसेवी हो जाता है, वह लोगों से मिलना-जुलना कम पसंद करता है। उसे यह आदत छोड़नी चाहिए। लोगों से मिलना चाहिए पर बातों का विषय सिनेमा, सेक्स नहीं राजनीति, दर्शन और साहित्य होना चाहिए। यदि इसकी सुविधा न हो तो रोज एक-दो घंटे रामचरित मानस (रामायण) सरीखे मन को ऊंचा उठाने वाले ग्रंथ का पाठ करना चाहिए।

ऐसे युवक के लिए सवेरे शाम टहलना भी जरूरी है। टहलने में आदमी अपने को अंदर से बाहर कर पाता है। चिंता-चिता की आग से निकल कर प्रकृति के साथ मिल सकता है। इसके लिए टहलने के लिए नित्य नए रास्ते पकड़ने चाहिएं और अपनी बात छोड़ कर दिखाई देने वाली प्रकृति एवं दूसरे विषयों पर विचार करना चाहिए।

स्नायु दौर्बल्य

चिंता करते-करते इस रोग के कई रोगियों के स्नायु दुर्बल हो जाते हैं। उन्हें घबराहट, चिंता, अपौरुष, अकर्मण्यता घेर लेती है। इनसे मुक्ति दिलाने के लिए सूर्य स्नान और ठंडे जल का स्नान बहुत काम करता है। सवेरे टहल आकर दस-पंद्रह मिटन नंगे बदन धूप में रहें और फिर ठंडे पानी से मल मलकर नहायें। सवेरे टहलने जाने के पहले दस-पंद्रह मिनट का मेहन-स्नान भी

लिया जा सके तो ठीक रहे। स्नायविक दुर्बलता दूर करने के लिए जल-चिकित्सा के स्नानों में वह बेजोड़ है।

कब्ज हो तो पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए सेर-डेढ़ सेर साफ मिट्टी ठंडे पानी से आटे की तरह गूंधकर पेट पर—नाभि से लेकर मूत्रेन्द्रिय तक और दाईं से बाईं कोख के स्थान पर—रखनी चाहिए। सोते समय ऐसा करना बहुत अच्छा है। यदि जागते रहें तो मिट्टी की पट्टी आध घंटे बाद हटा दें। नींद आ जाय तो जब नींद खुले तब हटावें।

स्वप्नदोष से मुक्ति पाने का कार्यक्रमः—सवेरे पांच बजे उठने पर—शौच आदि से निवृत्त हो कर दुबले हों तो दस मिनट का, दोहरा बदन हो तो पंद्रह मिनट का, मेहन-स्नान, फिर इसके बाद घंटे दो घंटे तेजी से बीच-बीच में गहरे सांस लेते हुए, टहलना।

सात बजे, दस मिनट तक धूप में रहकर स्नान।

साढ़े-सात बजे नाश्ता—कोई मौसमी फल और साथ में पाव-डेढ़-पाव गाय का कच्चा या एक उफान तक का गरम किया दूध।

साढ़े-बारह बजे—चोकर समेत आटे की रोटी और पाव-डेढ़ पाव हरी तरकारी, जिसके बनाने में उसे केवल उबल जाने दिया जाय और मसाले में नमक धनिए, हल्दी, जीरे के सिवा किसी अन्य मसाले का उपयोग न किया जाय।

पांच बजे शाम—टहलना।

छः बजे शाम—स्नान के बाद दोपहर वाला भोजन।

नौ बजे रात—पेट पर मिट्टी की पट्टी रख कर सोना।

आशान्वित रहें मन का सुसंस्कार करते रहें। स्वप्नदोष से शीघ्र मुक्ति पावेंगे।

यह कार्यक्रम केवल स्वप्नदोष से मुक्ति दिलाने में ही

समर्थ नहीं है, इस पर चलकर कोई भी हस्त-मैथुन, तद्जन्य कमजोरियों, खराबियों, शीघ्रपतन से भी छुटकारा पा सकता है।

श्वेतप्रदर और मासिक की अनियमितता के लिए भी यह कार्यक्रम समान रूप से उपयोगी है।

(आरोग्य से उद्धृत)

बुढ़ापे पर विजय

पहले जहां 'साठा' और 'पाठा' में गहरा सम्बन्ध था वहां आज दोनों में बहुत अन्तर आ गया है और लोग ५० की ही अवस्था में वृद्धों की श्रेणी में परिगणित होने लगे हैं। कारण यह है कि वर्तमान सभ्यता के प्रसाद से हमारा जीवन प्रकृति से इतना दूर हो गया है कि आज हम प्राकृतिक जीवन की पूरी कल्पना भी नहीं कर सकते। प्रचलित चिकित्सा-प्रणाली ने स्थिति का सुधार करने के बजाय उसे और भी दयनीय बना दिया है। मानव-शरीर जीवन-पर्यन्त दवाओं के जोर से दबाए गये रोगों से संघर्ष करने में ही लगा रह जाता है, उसे स्वयं अपना सुधार कर शक्ति संचित करने का अवसर ही नहीं मिल पाता। ऐसी हालत में यदि स्वस्थ व्यक्ति ढूंढने पर भी जल्द न मिले तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यदि लोग स्वास्थ्य-सुधार के प्राकृतिक सिद्धांतों का परिचय प्राप्त कर उन्हें अमल में लाने लगें तो ऐसा कोई कारण नहीं दीख पड़ता जिससे हम 'पाठा' रहने की अवस्था में ही वार्द्धक्य को आमंत्रित कर श्मशान-यात्रा की तैयारी करने लगें।

आहार कैसा हो ?

स्वास्थ्य और शक्ति अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आहार पर सबसे अधिक ध्यान देना आवश्यक है। उसमें उपयुक्त पोषण

तत्वों का होना तो आवश्यक है ही, अवस्था बढ़ने के साथ-साथ यह भी देखना होगा कि शरीर किस प्रकार के आहार का अधिक से अधिक कितनी मात्रा में पाचन या अभिशोषण कर सकता है। दरअसल यह सिद्धान्त तो सभी अवस्थाओं में लागू होता है, पर कोषाणुओं के क्षय और निर्माण की दृष्टि से युवावस्था से ही इस पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है, वृद्धावस्था में तो ध्यान देने की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। प्रयोगों से यह प्रमाणित हो चुका है कि स्थिति अनुकूल और सारे साधन प्रस्तुत हों तो कोषाणुओं की वृद्धि होती रहती है और यह बाढ़ तब तक जारी रहती है जब तक पोषण-तत्त्वों की प्राप्ति में कमी नहीं होती। कमी होने पर कोषाणुओं की वृद्धि क्रमशः कम पड़ कर अन्त में रुक जाती है और तब आहार न मिलने या कोषाणुओं से उत्पन्न हुए विष के एकत्र होने के कारण उस अंग का नाश हो जाता है। मनुष्य और एक कोषाणु वाले जीवों में अन्तर होता है, मनुष्य में शरीर की वृद्धि के साथ कोषाणुओं में जो परिवर्तन होता है उसके कारण उनकी पोषक तत्त्वों के अभिशोषण और मल निकालने की शक्ति में अन्तर पड़ जाता है। इसी परिवर्तन के कारण खाद्य-पदार्थों को विभिन्न तत्त्वों में विभक्त कर कोषाणुओं के उपयोग में आने योग्य बनाने की शक्ति तथा ग्रंथियों से निकलने वाले पाचक रसों की मात्रा कम पड़ जाती है। अगर आहार में शर्करा की मात्रा अधिक हो तो शरीर उसका सहन नहीं कर सकता और विटामिनों की आवश्यकता बहुत हो जाती है।

कोषाणुओं के आवरण में परिवर्तन होने से कोषाणु न तो नवयुवकों के कोषाणुओं की तरह पर्याप्त मात्रा में अपना आहार प्राप्त कर सकते हैं और न अपनी सफाई ही अच्छी तरह कर पाते हैं। कुछ लोग आवरण पर कैलशियम का अधिक मात्रा में एकत्र

होना भी इसका कारण मानते हैं, पर यदि ऐसा प्रयत्न किया जाय कि कोषाणुओं पर विषाक्त पदार्थ जमा ही न होने पाये तो उनकी शक्ति बहुत कुछ बनी रह सकती है। अगर आहार में इस बात का ध्यान रहे कि कार्बोहाइड्रेट के साथ प्रोटीन और वसा का संतुलन बराबर बना रहे तो शरीर में एक के जलन में दूसरा सहायक होगा और मल के निष्कासन पर भी इसका अच्छा प्रभाव होगा। अगर इस प्रकार के आहार में कुछ रक्षक तत्त्वों वाला खाद्य-पदार्थ भी शामिल कर लिया जाय तो दीर्घजीवन और वार्द्धक्य में शक्ति बनाये रखने में यह विशेष सहायक होगा।

प्रायः देखा जाता है कि अधिक अवस्था वालों की आंतें कुछ शिथिल पड़ जाती हैं जिससे अम्ल वाले फल खाने पर या आहार में शर्करा या श्वेतसार कुछ अधिक हो जाने पर गैस बनने लगती है, इसलिए इस प्रकार के आहार से जहां तक हो सके परहेज करना चाहिये। प्रातःकाल तरकारी का कुनकुना रस बहुत लाभदायक होता है। वृद्धावस्था में रात्रिकाल में सोते समय पेशाब लगने और शाम के भोजन में कुछ सम्बन्ध अवश्य रहता है। अगर इस पर ध्यान दिया जाय तो इस कष्ट से आसानी से बचा जा सकता है। इसके लिए ऐसे खाद्य-पदार्थ चुने जायं जो हल्के तो हों पर ज्यादा पेशाब लाने वाले न हों।

प्रौढ़ों और वृद्धों के लिए भी सलाद एक महत्त्वपूर्ण खाद्य-पदार्थ है। अवस्था अधिक होने के साथ-साथ शरीर के लिए विटामिनों की आवश्यकता बढ़ती जाती है और ये विटामिन सलाद से ही अधिक मात्रा में प्राप्त हो सकते हैं। संध्याकालीन भोजन में भी अगर सेब आदि मीठे फलों का सलाद रहे और मलाई के रूप में कुछ प्रोटीन रहे तो बुरा न होगा। अगर इच्छा हो तो तरकारी का कुनकुना रस सोने के पहले भी लिया जा सकता है।

इस प्रकार तत्त्वों की दृष्टि से आहार का और अवस्था बढ़ने के साथ मात्रा का प्रयोग द्वारा निश्चय करते रहना चाहिये। यह साधारण नियम है, व्यक्ति-विशेष की स्थिति के अनुसार इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। पर इससे किसी को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि केवल आहार बल और शक्ति बनाये रखने में समर्थ होगा। इससे यही होगा कि कोषाणुओं की संख्या घटने नहीं पायेगी और आवश्यकता पड़ने पर शक्ति भी प्राप्त हो सकेगी।

व्यायाम की आवश्यकता

कहा जाता है कि जन्म काल से ही मनुष्य में कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करने की सहज प्रवृत्ति होती है और यह आजीवन बनी रहती है। कृषि तथा अन्य श्रमसाध्य कार्य करने में आप ही आप काफी शारीरिक श्रम हो जाता है, पर वर्तमान सभ्यता का रूप ऐसा है जिसमें बहुत से लोगों को इस तरह का कोई श्रम नहीं करना पड़ता। ऐसे व्यक्तियों के लिए व्यायाम करना परमावश्यक हो जाता है। अवस्था अधिक होने पर मनुष्य की दिलचस्पी कुछ ऐसे विषयों में हो जाती है या उनकी जिम्मेदारियां इस प्रकार की होती हैं कि वह व्यायाम नहीं कर पाता जिससे शरीर में, विशेषकर मेरुदंड, गर्दन और पृष्ठ भाग में तनाव आ जाता है। बुढ़ापे में शरीर की आर्द्रता भी गायब हो जाती है जो धातु वस्तुओं के शुष्क होने का स्पष्ट प्रमाण है। इससे भी शरीर का संकुचन होता है। अगर प्रौढ़ और वृद्धावस्था में समझदारी और सावधानी के साथ नियमित रूप से व्यायाम किया जाय तो स्वास्थ्य और शक्ति बनाये रखने में बहुत सहायता मिलेगी। कुछ लोगों का खयाल है कि शारीरिक व्यायाम से हृदय पर जोर पड़ता है, पर यह सर्वथा निराधार है। बहुत दिनों तक कुछ न करते रहकर एकाएक कठिन

व्यायाम शुरू कर देना ही प्रायः कष्ट का कारण हुआ करता है। व्यायाम न करने का एक चिह्न वृद्धों में स्पष्ट रूप से देख पड़ता है—गर्दन पर सिर का संतुलित न रहना। कुछ लोगों की पीठ और कंधों का आगे की ओर झुक जाना उनके पेशे से भी संबद्ध हो सकता है, थकावट से यह और बढ़ता है, क्योंकि उसमें शरीर का जल सूख जाता है और कंधों के आगे की ओर झुकने की प्रवृत्ति होती है। सिर को सीधे ऊपर रखने का सहज प्रयत्न गर्दन के पीछे की ओर की पेशी का तनाव बढ़ा देता है। किसी विषय पर गंभीर चिंतन करते समय भी यही बात होती है।

सिर का कंपन

इस मुद्रा से उत्पन्न होने वाली जो खराबियां हैं उनमें दो स्पष्ट रूप से देख पड़ती हैं—क्लांति की अनुभूति और अस्थिरता की भावना जो बढ़कर सिर के कंपन का रूप ग्रहण कर लेती है। अगर ठुड्डी की स्थिति पर नियंत्रण रखने और गर्दन का तनाव दूर करने का प्रयत्न हो तो इनसे आसानी से बचा जा सकता है। बिस्तरे से उठने के पहले ही तकिये पर गर्दन जमा कर चित लेट जाइये और ठुड्डी को सीने के गड्ढे में रखते हुए तकिये को दबाइये। यह क्रिया कुछ बार करने के बाद गर्दन ढीली कर सिर को दाहिने बायें इस प्रकार घुमाइए कि गाल तकिये को छूते रहें। यह दोष और एक प्रकार से दूर किया जा सकता है। गर्दन के पीछे उंगलियों को आपस में मिला कर सिर को ऊपर की ओर खींचिए या खड़े होकर ठुड्डी को सीने के गड्ढे में डाल कर पेट को लटाइये। कुछ दिनों तक इन क्रियाओं को चलाने पर गर्दन का तनाव जाता रहेगा और मन में सिर के संतुलन की भावना उत्पन्न हो जायगी जिससे न्हद आने भी लगेगा।

अधिक अवस्था वालों के लिए दूसरा मुख्य व्यायाम उदर की निम्नस्थ पेशियों का है। इस अवस्था में पेट के नीचे लटक आने से पाचन मंद पड़ जाने और आंत उतरने की बहुत संभावना रहती है। इसके लिए भी बिस्तर पर लेटे-लेटे व्यायाम किया जा सकता है। पीठ के बल लेट जाइए और घुटनों को सीधे रखते हुए पैरों को और सिर को साथ ही साथ ऊपर उठाइये। इससे उदर की पेशियां कड़ी पड़ जायंगी। यह व्यायाम तीन बार से आरम्भ करके धीरे धीरे बढ़ाते जाना चाहिये।

ऊंचे स्थानों से परहेज [illegible]

जिन वृद्धों की जीवनी शक्ति कम हो गई है उन्हें पहाड़ पर नहीं चढ़ना चाहिये। नाड़ी-दौर्बल्य वालों को ऐसे स्थानों में गाढ़ी नींद नहीं आती जिससे दिल की धड़कन बढ़ जाती है। ब्रोंकाइटिस (श्वासनलिका के शोथ) की ओर जिनकी प्रवृत्ति हो उनके लिए भी पहाड़ी की ठंडी शुष्क हवा हानिकारक होती है। साधारणतः ऊंचा स्थान मेटाबोलिज्म (पाचन) को उत्तेजित करता है, जिन वृद्धों की नाड़ीशक्ति इस उत्तेजना को सहन करने योग्य न हो उन्हें ऐसे स्थानों से बचना चाहिये। जिन्हें ज्वर हो, जिनका शरीर विषमय या क्षीण हो वे नीची जगह में ज्यादा अच्छे रहेंगे। जहां हवा का चाप अधिक हो वह स्थान वृद्धों के लिए अच्छा होता है।

ऊपर की बातों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वृद्धावस्था में शक्तिशाली बने रहने का सीधा उपाय जीवनयापन का, रहन-सहन का एक ऐसा ढंग अपनाना है, आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों को ऐसा बनाए रखना है जिसमें शरीर अपना कार्य समुचित रूप से करता जाय।

यदि हम समाज के लिए [illegible] को उपयोगी बनाना चाहते

तो हमें जीवन में वर्ष जोड़ने का प्रयत्न न
करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

स्वास्थ्य-रक्षा के कुछ अ

स्वस्थ मनुष्य का जीवन ही वास्तव
अस्वस्थ तथा रुग्ण व्यक्ति इसी जीवन में
रहते हैं। सब साधन-सम्पन्न होने पर भी
नहीं रह सकता। अस्वस्थता का प्रायः मुख्
अधिकांश स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों से अपरिचित रहते हैं।
कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो जानबूझ कर भी स्वास्थ्य के नियमों की
अवहेलना करते रहते हैं। दोनों ही अपार कष्ट भोगते हैं। अतः
पाठकों की जानकारी तथा लाभ के लिये स्वास्थ्यरक्षा के कुछ
अमूल्य नियमों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है:—

१. तेल की मालिश—सप्ताह में कम से कम दो बार अवश्य शरीर में मालिश करनी चाहिए। तेल-मालिश से शरीर में बल, कान्ति की वृद्धि तथा हड्डियों में दृढ़ता उत्पन्न होती है। एक छटांक शुद्ध सरसों के तेल को शरीर में पचाना, आधा सेर घी खाने के समान लाभदायक है।

आयुर्वेद में लिखा है कि शिर, पांव और कान में विशेषतया तेल लगावे। सिर में तेल लगाने से बाल जल्दी नहीं पकते, भौरों के समान बाल काले और चिकने बने रहते हैं। मस्तक की थकावट दूर होती है। बुद्धि बढ़ती है, आंख की ज्योति पुष्ट होती है तथा मस्तक-सम्बन्धी रोग बहुत ही कम होते हैं। पांव में तेल-मर्दन करने से पैरों का फूटना या थकावट, पांव की सूजन आदि रोग नहीं होते और निद्रा खूब आती है। कान में तेल डालने से कान का पर्दा [illegible] रहता है और कान में कोई [illegible] नहीं होता।